कृपाराम खिड़िया

प्रस्तर पर मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य छपा है—जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

कृपाराम खिड़िया

लेखक
उदयवीर शर्मा

The rates of the Sahitya Akademi publications have been increased w.e.f. 1 May 1992 vide Govt. of India letter No. JS(K)/91-545 dated 11 February 1992.

साहित्य अकादेमी

Kriparam Khiriya : A monograph in Hindi by Udayveer Sharma, Sahitya Akademi, New Delhi (1990) SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15·00

प्रथम संस्करण 1990

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

प्रादेशिक कार्यालय

29, एलडाम्स रोड, तेनामपेट, मद्रास 600 018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23 ए/44 एक्स,
डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700053

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15·00

मुद्रक
प्रदीप प्रिंटर्स, WZ-62 बी, कृष्णा पार्क एक्सटेंशन,
विकासपुरी, नयी दिल्ली 110 018

अनुक्रम

1

जीवन-वृत्त और रचनाएँ

संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी आदि सभी भाषाओं के महान मनीषियों के संबंध में पुष्ट प्रामाणिक जानकारी के लिए हमें इधर-उधर भटकना ही पडता है। यही तथ्य कृपाराम खिड़िया पर भी लागू होता है। उन्होंने अपने संबंध में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है। इसलिए कवि की प्रामाणिक जीवनी प्राप्त करने के लिए चारण कुल की मौखिक परम्परा, उनके घरानों में पड़ी मंजूषाओं में दबी सामग्री, शोध संस्थानों, प्राचीन पुस्तकालयों, संग्रहालयों, पोथीखानों तथा अन्य साहित्य प्रेमियों के यहाँ इधर-उधर बिखरी पड़ी सामग्री का सहारा लिया जाता रहा है। ये ही प्रमुख स्रोत हमारी अद्यावधि जानकारी के आधार हैं।

कृपाराम 'खिड़िया' शाखा के चारण थे। इस नाम के कुल चार कवि हो गये हैं— १. कृपाराम खिड़िया २. कृपाराम बणसूर ३. कृपाराम बारहठ ४. कृपाराम भादा (वरदा १४/३ बिसाऊ, सौभाग्यसिंह शेखावत)

इन सबमें सर्वाधिक प्रसिद्धि कृपाराम खिड़िया को मिली। खराड़ी ग्राम खिड़िया शाखा के चारणों का आदि स्थान माना जाता है परन्तु अधिकांश विद्वान अब इसे इतिहास साक्ष्य-सम्मत नहीं मानते। विद्वानों की मान्यता है कि खराड़ी (खराढ़ी, खैराड़ी) में निवास स्थान के कारण ही चारणों की एक शाखा का नाम 'खिड़िया' पड़ा। परन्तु इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त कृपाराम की वंशावली के आधार पर 'खिड़ियाजी' खिड़िया चारणों के पूर्व पुरुष थे और उन्हीं के वंशजों की शाखा खिड़िया नाम से प्रसिद्ध हुई लगती है। एक हस्तलिखित गुटके से प्राप्त मूल वंशावली इस प्रकार से है[1] :-

"याददास्ती पीढा की। भूरो-चालकदान को, चालकदान-हमीरजी को, हमीरजी-पीथजी को, पीथजी-केसनजी को, केसनजी-कृपारामजी को,

---

१. यह गुटका कवि के वंशज श्री चतरदान खिड़िया कृपारामजी की ढाणी (सीकर) के पास सुरक्षित है।

कृपारामजी-जगरामजी को, जगरामजी-राघोदासजी को, राधवदासजी-महेस दासजी को, महेसदासजी-हरीदासजी को, हरीदासजी-आपाजी को, आपाजी-जगमलजी को, जयमलजी-सेवाजी को, सेवाजी-लुमाजी को, लुमाजी-चानणजी रो, चानणजी-लुणकरणजी रो, लुणकरणजी-मोकलजी रो, मोकलजी-करमाणदजी रो, करमाणदजी-जेठाणजी रो, जेठाणजी-सोढाणजी रो, सोढाणजी-बोरजी रो, बोरजी-बनपालजी रो, बनपालजी-भाउजी रो, भाउजी-पुरजी रो, पुरजी-लोथजी रो, लोथजी-षिड़ियाजी रो, षिडियाजी-फूलजी रो, फूलजी- साकाजी रो, साकाजी-सुजाणजी रो, सुजाणजी-देवधरमजी रो, देवधरमजी-चामुजी रो, चामुजी-केसनाजी रो, केसनाजी-चोराड़जी रो।"

इस वंशावली से स्पष्ट होता है कि खिड़ियाजी, खिड़िया चारणों के पूर्व पुरुष थे और इन्हीं के नाम पर इस शाखा का यह नाम प्रचलित हुआ निश्चित होता हैं।

डा. तैस्सितोरी द्वारा सम्पादित प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की सूची में उद्धृत यह विवरण 'खिड़िया' शाखा के नामकरण के संबंध में विशेष उल्लेखनीय है—'खिड़िया शाखा के चारण मूल में ब्राह्मण थे। चोरवाड़ा गाँव में रहने के कारण वे चोरवाड़ा कहलाते थे। कालान्तर में, उक्त खानदान में चौमुँह (चामुजी) और कोल्हा नामक दो भाई हुए, जिनमें चौहमुं के वंशज खिड़िया और कोल्हा के वंशज कविया कहलाए।" (Prose Chronicles. sec. I, Pt: I. Jodhpur State, Page 55; Asiatic Society, Calcutta 1917).

इससे प्रकट होता है कि चारणों को खराड़ी ग्राम (जिला नागौर में परवतसर के निकट) मिलने व उसमें आबाद होने के कई शताब्दियों पूर्व भी यह खानदान खिड़िया नाम से ही प्रसिद्ध था। इस संबंध में 'मारवाड़ रा परगना री विगत' प्रथम भाग, पृ० ३७ पर लिखा है कि वि. सं. १६४० में मोटाराजा उदयसिंह जब जोधपुर का राजा बना तो उसनें चांनण (चांदण) खिड़िया के वंशजों में धरमा खिड़िया को काँवलियों तथा लुंभा खिड़िया को गाँव खराड़ी सासण में दिए।

इससे यह सिद्ध होता है कि इस शाखा के चारण इससे पहले खराड़ी में आबाद नहीं थे और इससे यह भी स्वीकार करने में समर्थ होते हैं कि खिड़ियाजी के नाम पर ही इस शाख का नाम 'खिड़िया' हुआ न कि खराड़ी ग्राम के आधार पर। इन चानणजी का नाम उक्त वंशावली में खिड़ियाजी से ग्यारहवीं पीढ़ी में आता है। इससे इस वंशावली की प्रामाणिकता भी सिद्ध होती है।

खिड़िया शाखा के चारणों में चानणजी विशेष प्रसिद्ध हुए हैं। इनका

समय वि. सं. १४७० से १५५० के मध्य माना जाता है। प्राप्त वंशावली के अनुसार इनके पिता का नाम लूणकरण था। वे महाराणा मोकल के समय में मेवाड़ गये। महाराणा ने इनको दो गाँव सासण में देकर अपने पास रखा।[1] चानणजी का विशेष सम्बन्ध राठोड़राव रणमल और राव जोधा से रहा था। और उस समय राठौड़ घराने में इनका बहुत सम्मान था। राव रणमल, राव रिणधीर और सत्ता भाटी पर लिखे इनके दोहे सुप्रसिद्ध हैं।[2]

इन्हीं चानणजी के वंश में कवि कृपाराम के पिता जगरामजी का जन्म खराड़ी में हुआ। जगरामजी कुचामण के ठाकुर जालिमसिंह मेड़तिया की सेवा में खराड़ी से आये थे। जालिमसिंह ने राज्य का एक गाँव जूसरी[3] उनको (जगरामजी को) सासण में दिया था। यहीं कृपाराम का जन्म हुआ माना जाता हैं। जगरामजी के तीन पुत्र हुए बताये जाते हैं :-

१. मनोहरदास २. जादूराम ३. कृपाराम

बालक कृपाराम का बचपन एवं अध्ययन काल जूसरी में ही व्यतीत हुआ और वे वहीं के निवासी हो गये। वि. सं. १८२४ तक जूसरी में उनका रहना 'सुन्दर शृंगार' ग्रंथ के लिपिकर्त्ता के रूप में उनके द्वारा उस पर अंकित तिथि से प्रमाणित होता है।[4]

श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ने लिखा है कि वि. सं. १८०७ मार्गशीर्ष शुक्ला १० को मेड़ता के समीपस्थ ग्राम आलीणवास (आलीणयास) के मैदान में बखतसिंह नागौर, गजसिंह बीकानेर और बहादुरसिंह किशनगढ़ की संयुक्त सेना से लड़ते हुए ठाकुर जालिमसिंह वीरगति को प्राप्त हुए। बखतसिंह और रामसिंह के इस आपसी कलह में मारवाड़ के मेड़तिये ठिकानों के सभी सयाने सरदार काम आये। कुचामण के तो बड़े कुँवर भी इसी युद्ध में मारे गये। (शोध पत्रिका १४/१) यह घटना कवि कृपाराम के लिए बड़ी दुख:

---

१. कृपाराम खिड़िया और उनकी रचना : लेखक ठा. सुरजनसिंह शेखावत मरुभारती, वर्ष ३३, अंक एक (पृ० २७) और मारवाड रा परगना री विगत, प्रथम भाग में विस्तृत वर्णन द्रष्टव्य है।

२. इनके जीवन और रचनाओं के लिए द्रष्टव्य—परिषद् पत्रिका, वर्ष, ६ अंक २ जुलाई १९६६ में डा. हीरालाल माहेश्वरी का लेख 'कवि खिड़िया-चानण : अज्ञात रचनाएँ'।

३. यह गाँव मकराना स्टेशन से पूर्व की ओर दो किलोमीटर पर है।

४. यह ग्रंथ कवि के वंशज श्री चतरदानजी खिड़िया निवासी कृपारामजीं की ढ़ाणी (सीकर) के पास सुरक्षित है।

दायक रही। अपने आश्रयदाता जालिमसिंह और बाल-सखा बड़े कुंवर साहब का अभाव उनको खटकने लगा और वे खिन्न मन रहने लगे। इस घटना ने उनको जीवन के एक मोड़ पर ला खड़ा किया। उनको चारों ओर निराशा नज़र आने लगी। ऐसी स्थिति में कवि का मन अपने ही गाँव में नहीं लगा और वे अपने अनुकूल आश्रयदाता की तलाश में लग गये। अन्ततः वे जूसरी से सीकर के रावराजा देवीसिंह के पास आ गये। इनका शासन काल वि. सं, १८२० से १८५२ तक रहा। इसके अनुसार कवि कृपाराम इनके शासन काल की प्रारम्भिक अवधि में सीकर आये होंगे। देवीसिंह अपने पिता की मृत्यु होने पर दस वर्ष की अवस्था में वि. सं. १८२० में गद्दी पर बैठे। इसलिए राज्य-संचालन-कार्य उनके चाचा बुधसिंह किया करते थे। सं. १८२४ वि. में माँवड़ा के युद्ध में ठाकुर बुधसिंह मारे गये। तब देवीसिंह स्वयं राज्य का संचालन करने लगे। और इनके कार्यों की ख्याति चारों ओर फैलने लगी। तभी सं. १८३०-३५ के आसपास कृपाराम सीकर आए होंगे। वि. सं. १८४७ में तो उनको सासण में भूमि का पट्टा देवीसिंह ने प्रदान कर दिया था[1]।

राव राजा देवीसिंह कुशल योद्धा, प्रिय प्रशासक, जनप्रिय राजा और विद्वानों के गुणग्राही थे। इन्होंने अपने शासन काल में अनेक युद्ध लड़े, कई क़िले और गढ़ बनवाये, शहर आबाद किये, बसाये तथा राज्य-व्यवस्था को सुन्दर ढंग से संचालित किया। राज्य-विस्तार किया तथा वैभव बढ़ाया। इनकी प्रशंसा सुनकर दूर-दूर से विद्वान, कवि आदि इनके पास आने लगे। कवि कवीन्द्र का नाम भी इनके आश्रितों में मिलता है। सीकर के इतिहास (लें० पं. झाबरमल्ल शर्मा) में लिखा है कि राव देवीसिंह के आश्रित गुणियों में खिड़िया चारण कृपाराम का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। वे अच्छे विचारशील विद्वान और कवि थे।[2]

सर्व श्री मोतीलाल मेनारिया, डा. मोहनलाल जिज्ञासु, सीताराम लालस, डा. ओमानन्द सारस्वत, गोवर्धन शर्मा आदि विद्वानों ने कविवर कृपाराम के बड़े होने पर सीकर नरेश लक्ष्मणसिंह (शासन काल वि. सं. १८५२ से १८९० तक) के आश्रय में आने की बात स्वीकार की है, जो प्रमाण-पुष्ट नहीं है।[3] द्वितीय पक्ष में सर्व श्री नरोत्तमदास स्वामी, पं. झाबरमल्ल

१. यह पट्टा कवि के वंशज श्री चतरदानजी के पास सुरक्षित है।

२. सीकर का इतिहास, पृ० १००

३. राजस्थानी भाषा और साहित्य का इतिहास (मोतीलाल मेनारिया) पृ० १९४-१९५, राजस्थान के चारणों का डिंगल साहित्य में योगदान (मोहनलाल जिज्ञासु) पृ० ३३९, राजस्थानी सबद कोस पृ० १६४, परम्परा, भाग १५-१६ पृ० १५३, राजस्थानी कवि (दूसरा खंड) पृ० १३३

शर्मा, अगरचन्द नाहटा, डा. मनोहर शर्मा, सौभाग्यसिंह शेखावत, ठा० भूरसिंह आदि विद्वानों ने सीकर नरेश देवीसिंह के शासन(वि. सं. १८२०-१८५२) में कवि कृपाराम का उनके आश्रय में आना स्वीकार किया है, जो अनेक प्रमाणों से पुष्ट है।[1] उनमें से राव राजाजी द्वारा कवि को प्रदत्त भूमि के पट्टे, ताम्रपत्रों आदि की प्रतिलिपियों में से आवश्यक अंश प्रमाणस्वरूप आगे उद्धृत किए जा रहे हैं।

"महाराजा श्री देवीसिंघजी बचनात षिड़िया क्रिपारामजी ने गाँव महाराजपुरा शासण इनायत कर्‌यो, सो धरती बीधा २०२१ अंकें दोय हजार अक्कीस नाप पक्के डोरी हाथ ७५ पचहतर कै बख्शी जै की तफसील जैल क० कासली की बीधा एक हजार इकहतरी मौ० नागवा बीघा चारी सौ बास की जमी बीघा पाच सौ पचास जमी व बीघा दो हजार इक्कीस ई माफिक नपाया...सो महावो जुपावो उपज होय सो खावो पीवो दुवाद्‌यो...मिति मगसिर बदी १३ सम्वत १८४७ का द: जीवणराम नानड़ का हुकम श्री हजुर का।"[2]

इस ताम्रपत्र से यह सिद्ध होता है कि कवि कृपाराम वि. सं. १८४७ से बहुत पहले ही देवीसिंह के आश्रय में आगये थे तथा उन्होंने अपनी सेवा-चाकरी एवं विद्वत्ता से राव राजाजी को प्रसन्न करके यह भूमि प्राप्त की थी।

रावराजा देवीसिंह की राजसभा के अनेक पंडितों, कवियों और विद्वानों में खिड़िया कृपाराम का विशेष मान था। उनकी राज्य कार्यों में व्यक्तिगत रूप से राय ली जाती थी तथा इनकी गंभीर सम्मति का विशेष महत्त्व होता था। राजदरबार में भी आपका अत्यधिक सम्मान था। सीकर के इतिहास में लिखा है कि उनकी कविता एवं विचारशीलता सभी के लिए आनन्द तथा गौरव की वस्तु थी। देवीसिंह के शासन काल में कवि का सम्मान उल्लेखनीय गति से बढ़ता ही गया। वे अपने कार्यों के द्वारा अपने आश्रयदाता के परम विश्वस्त हो गये थे और संकट के समय उनसे उचित सलाह ली जाने लगी।

रावराजा देवीसिंह ने वि. सं. १८५२ में अपने स्वर्गवास से पूर्व अपने पुत्र लक्ष्मणसिंह की देखभाल व उनके मार्गदर्शन के लिए अपने विश्वस्त चार

---

१. इन विद्वानों के ग्रंथ हैं, क्रमशः–
राजिये रा दूहा पृ० १, सीकर का इतिहास पृ० १००, साधना (५/५) पृ० २, शोध पत्रिका (१४/१), पृ० ८, विविध संग्रह, पृ० १९-२०

२. यह ताम्र पत्र कवि के वंशज श्री चतरदान के सौजन्य से लेखक को देखने को मिला था। वे इसको बहुत सम्मान एवं सुरक्षा के साथ रखते हैं तथा किसी को दिखाने में अपना गौरव समझते हैं।

सेवकों को उनका संरक्षक नियुक्त किया, उनमें से एक कृपाराम भी थे। इस विषय का उल्लेख 'रायसल जस सरोज' ग्रंथ में इस प्रकार हुआ है —

पुनि धाभाई पेखहू, सूरजमल सो जानी।
कृपाराम चारण कह्यो, पुनि सब पुत्र प्रमानि ।। (कलिका ६)

कृपाराम ने अपने कर्त्तव्य को भली प्रकार निभाया तथा सदैव बालक लक्ष्मणसिंह के मार्गदर्शक बने रहे। प्रत्येक संकट के समय उनके लिए तैयार रहे जिसका प्रमाण उत्तराधिकार को लेकर सीकर पर हुए जयपुर के आक्रमण को टलवाना है।[1]

---

१. (अ) विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य, सीकर का इतिहास, पृ० १०२-१०६।

(आ) उस समय सीकर के राज्य कार्यों का संचालन लक्ष्मण सिंह की माता कान्हलोतजी (देवीसिंहजी की रानी) अपने परामर्शदाताओं की राय से किया करती थी। जयपुर की चढ़ाई होने पर राजमाता ने अपने मंत्री सूरजमल्ल धाभाई, जालिमसिंह चांदावत और मेदसिंह परसरामजीका को राजनीतिकुशल कवि खिड़िया कृपाराम के साथ नन्दराम हलदिया के पास भेजे। उन्होंने उपस्थित होकर विनम्रता के साथ रावराजा देवीसिंह के पूर्व प्रगाढ़ प्रेम-संबंध का हलदिया को स्मरण कराया और फिर शेखावतों की क्रोधाग्नि से लक्ष्मणसिंह को बचाने की प्रार्थना की। कृपाराम खिड़िया ने उस समय निम्नलिखित सोरठे बड़े मार्मिक ढंग से हलदिया को सुनाए, ऐसा प्रसिद्ध है।

समझणहार सुजाण, नर मौसर चूके नहीं।
अवसर रो अहसाण, रहे घणा दिन, राजिया ।।
सांचो मित्र सचेत, कह्यो काम न करे किसो।
हरि अरजन रो हेत, रथ कर हाक्यौ, राजिया ।।
सुख में प्रीत सवाय, दुख में मुख टाला दिवे।
जे के कहसी जाय, राम-कचेड़ी, राजिया ।।

हलदिया पर इनका अत्यधिक प्रभाव पड़ा और सीकर, जयपुर की क्रोधानल से बच गया। कवि ने अपने बुद्धिबल से सीकर राज्य की रक्षा की और अपनी राजनीतिक कुशलता का परिचय दिया। इस घटना का उल्लेख अनेक ग्रंथों में उपलब्ध है, जिनमें मलसीसर के ठाकुर भूरसिंहजी शेखावत द्वारा सम्पादित विविध-संग्रह ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय है। (विविध संग्रह ग्रंथ, पृ० १९-२०)

देवीसिंह के शासन काल में कवि रूप में सम्मानित कृपाराम खिड़िया, उनके पुत्र लक्ष्मणसिंह के शासन काल में कवि के साथ-साथ एक राजनीति निपुण सभासद के रूप में प्रसिद्ध हो गये। आप मात्र दरबारी कवि ही नहीं थे बल्कि राजनीति के मामलों में परामर्श देनेवाले तथा उच्चकोटि के व्यवहार कुशल थे। सीकर नरेश राव राजा लक्ष्मणसिंह ने भी इनको हाथी, सिरोपाव, मोती और लिछमणपुरा गाँव की भूमि वि. सं. १८५८ में प्रदान की जिसका ताम्रपत्र उनके वंशजों के पास अद्यावधि सुरक्षित है। उसका आवश्यक अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :–

"महाराजे श्री लिछमणसिंघजी बंचनात षिड़िया कृपारामजी नैं हाथीं, सिरोपाव, मोती, अर सासण लिछमणपुरो इनायत दियो जीं की जमी बीघा २००१ दोय हजार एक जेवड़ी हाथ ७५ पचेतर की सो सुताद के कांकड़ मांय दीनी जीं में हासल पैदावारी हौवै सो खावो पीवौ अर दुवा द्यो... सम्बत १८५८ का मिती आसाढ़ बद २ द: बहीयाराम।"

इन ताम्रपत्रों से कवि का सीकर-शासन में अत्यधिक सम्मान था और इनका महाराजपुरा (वर्तमान भड़कासली) तथा लिछमणपुरा (वर्तमान कृपारामजी की ढाणी) नामक दो गाँव तत्कालीन नरेशों द्वारा दिये जाना प्रकट होता है। इनको व्यवहार में 'राज श्री' का सम्मान प्राप्त था। कवि के प्रपौत्र की एक जन्म पत्रिका लेखक को प्राप्त हुई है, जिसमें कृपाराम और उनके पुत्र किसनजी के नाम के आगे 'राज श्री' जैसे सम्मान सूचक शब्दों का प्रयोग हुआ है। उस जन्म पत्रिका का आवश्यक अंश यहाँ प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है :

'कवि वंशोद्भव जाति ष्यड़ियाजी सर्व धर्म परायणं। गऊ ब्राह्मण के दास। बारठजी राज्य श्री कृपारामजी तस्यात्मज राजि श्री किसनजी।। तत्पुत्र चीरंजीव प्रथीराजजी ग्रह भार्य्या माहा रूपवंती पतिवृता धर्म परायणी की सोवन कूष्य पुत्र जन्म ।।'

इससे कवि की राज, समाज और साहित्य में गहरी लोकप्रियता का पता चलता है। कवि को दोनों गाँव 'सासण' (शासन) के रूप में मिले थे, 'उदक' के रूप में नहीं। चारणों को 'सासण' या 'उदक' के रूप में भूमि दी जाती थी। उदक में शुद्धत: दान-भाव है परन्तु 'सासण' में सेवा के फलस्वरूप सम्मानपूर्वक दिया गया पुरस्कार एवं भेंट मिश्रित दान है, दया मिश्रित दान नहीं है। उसको अपने प्रयोग में लेने की आज्ञा (शासन) है। माफ़ी का भाव दोनों में ही समाया हुआ है परन्तु फिर भी उदक से शासन का भाव अधिक सम्मानजनक है। शासक के सक्रिय शक्ति स्रोतों को ही

शासन में भूमि दी जाती थी, जिसका राज और समाज में राजकीय सम्मान रहता था। केवल दान (उदक) में यह भाव दृष्टिगत नहीं होता था।

खिड़िया कृपाराम की जन्म तथा मृत्यु की प्रामाणिक तिथियाँ अद्यावधि प्राप्त नहीं हुई हैं परन्तु प्राप्त सामग्री के आधार पर उनके जीवन काल (वि. सं. १८००–१८९०) का अनुमान लगाया जा सकता है। उस सामग्री का उल्लेख क्रमशः आगे किया जा रहा है –

(१) वि. सं. १८०७ में मेड़ता के समीपस्थ ग्राम आलीणयास (लूणियावास) के मैदान में कृपाराम के पिता जगरामजी के आश्रयदाता जालिमसिंह का वीरगति प्राप्त होना इतिहास प्रसिद्ध है। उस समय कृपारामजी वहाँ अपना बाल्यकाल व्यतीत कर रहे थे।

(२) खिड़िया कृपाराम ने जूसरी गाँव में 'सुन्दर शृंगार' ग्रंथ की नक़ल की जिसके अन्त में लिखा हुआ है:

> "इति श्री मन्महाकवि राज विरचते सुन्दर सिंगार ग्रंथ सम्पूर्ण संवत १८२४ रा वर्षे मिति चैत बदी ३ बुधवासरे लिपीकृतं षिड़िया कृपाराम जूसरी मध्ये वाचै जिण नै राम राम बँचिज्यो जी।"

(३) इसी ग्रंथ के अन्त में पृथक् से यह और लिखा हुआ है—'पोथी षिड़िया क्रपाराम जगरामोत री छै वास षड़वल्यै तथा जगतेसपूरै। पोथी में ग्रंथ सुन्दर शृंगारलिष्यो छै राजि श्री मनोहरदासजी सूं राजि श्री कृपारामजी सू भेरूदान जी सूँ बारठ गोयंददास रो मुजरो बंचावज्यो: मिती बैसाख वदि ११ संमत १८२७ रा लिषतं गां भषरी मध्ये।'

यह ग्रंथ कवि के वंशज कृपारामजी की ढाणी[1] के निवासी श्री मूलदान के पास सुरक्षित है।

इन तथ्यों के आधार पर कवि का जन्म वि. सं. १८०० के आसपास होना निश्चित किया जा सकता है। क्योंकि वि. सं. १८२४ में तो वे 'सुन्दर शृंगार' ग्रंथ के लिपिकर्त्ता के रूप में साहित्य संसार के सम्मुख आ गये थे और वि. सं. १८२७ में उनको 'राजश्री' जैसे सम्मानजनक शब्दों से सम्बोधित किया गया है, जो उनकी प्रसिद्धि का सूचक है।

इसी प्रकार कवि की मृत्यु-संवत का अनुमान लगाया जा सकता है। कवि की रचनाओं में एक गीत महाराणा जवानसिंह मेवाड़ के यशोगान में लिखा हुआ मिला है। जवानसिंह का राज्यारोहण काल वि. सं. १८८५ था। (वरदा १४/३ श्री सौभाग्यसिंह शेखावत का लेख) इसके आधार पर कृपारामजी १८८५ तक विद्यमान थे।

---

१. यह ढाणी सीकर-सालासर मार्ग पर स्थित है।

इन तथ्यों के आधार पर कवि का जीवनकाल वि. सं. १८०० से १८६० के मध्य में माना जा सकता है। कवि के वंशजों की भी यही मान्यता है कि कृपारामजी ने दीर्घायु प्राप्त की थी।

कवि अपने अन्तिम समय तक सीकर-शासन के द्वारा सम्मानित रहे तथा विद्वत् समाज के ही नहीं जन-मन के भी हृदय-हार बने रहे। वे अपने अन्तिम समय में अपने ग्राम 'कृपारामजी की ढ़ाणी' में आ गये और अन्त तक यहीं रहे, ऐसी उनके वंशजों की मान्यता है। आज भी उनके वंशज इस 'ढ़ाणी' में विद्यमान हैं।

खिड़िया कृपाराम के जीवन परिचय को पूर्णता देने के लिए 'राजिया' के सम्बन्ध में जानकारी प्रस्तुत करना अत्यन्त आवश्यक है।

राजिया ने अपनी सेवा-श्रद्धा से समर्पित हो कवि के 'काव्य-शरीर' को अमर बनाने में योग दिया है। उस 'अमर सेवक' के संबंध में निम्नलिखित लोक मान्यताएँ हैं :

(१)

विद्वानों का मानना है कि राजिया दारोगा जाति का बालक था। वह अपनी शिशु-अवस्था में ही कृपारामजी के पास आ गया था। परन्तु श्री सुरजन सिंह शेखावत ने श्री फतहसिंह मानव कविया शाखा के चारण निवासी बरसणी (मारवाड़) के द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर बताया है कि राजिये का पूरा नाम राजमल था और वह वैश्य जाति का बालक था।

एक बार देश में भयंकर अकाल पड़ा तो 'मरु मालवै के लिए ढुल गई' अर्थात भूखे लोगों की भीड़ मालवे की ओर चल पड़ी। राजमल के माता-पिता भी भटकते हुए जूसरी होते हुए निकले और अपने नन्हें बच्चे को वहीं छोड़कर आगे चल पड़े। वही बालक कृपाराम का आश्रय पाकर बड़ा हुआ और उनकी सेवा में रहने लगा तथा आजीवन रहा। उसका काम था कि प्रतिदिन हुक्का भरकर बारहठजी को पिलाना। खिड़ियाजी अमल (अफ़ीम) का मावा लेकर हुक्का पीते और राजिये को सम्बोधित कर एक सोरठा रच देते थे। इस प्रकार कृपारामजी ने अपने सेवक को अमर बना दिया।

(२)

कवि के वंशजों-रामरतनजी, मूलदानजी चतरदानजी आदि की मान्यता के अनुसार राजिया बनिया था। वि. सं. १८२५ में भयंकर अकाल पड़ा तब वह कृपाराम की शरण में आया। अपनी सेवा चाकरी के काम को देखते हुए उसने अपने आपको दारोगा बना लिया। वह जूसरी में शरणागत हुआ था।

(३)

महाराजा मानसिंहजी, जोधपुर ने राजिया को देखकर कहा—

सोनै री साजांह, नग करण सूं जड़ियाजिके ।
कीनो कविराजाह, राजां मालम, राजिया ।।

(हे राजिया, कविराजा ने मानों सोने के अलंकारों में रत्न जड़ दिये हों, ऐसे दूहों की रचना करके तुझे राजाओं तक में प्रख्यात कर दिया ।)

(४)

यह भी कहा जाता है कि राजिया रावणा जाति में उत्पन्न हुआ था । इसका जन्म वि. सं. १८२५ के आस-पास मारवाड़ राज्य के कुचामण ठिकाने के जूसरी नामक ग्राम में हुआ । इसका जन्म नाम 'राजाराम' था । लोग उसे 'राजिया' कहकर पुकारने लगे । अखिल भारतवर्षीय रावणा राजपूत महासभा, अजमेर का मानना है कि 'राजिया के सोरठे' राजारामजी चौहान के वनाये हुए हैं परन्तु अब यह मत स्वीकार्य नहीं है ।

चारणों में प्रसिद्धि है कि खिड़िया कृपाराम के यहाँ राजिया नामक दरोगा (रावणा) नौकर था । खिड़ियाजी एक बार वि. सं. १८५२ में बहुत बीमार पड़े और राजिया ने उनकी मन से खूब सेवा की । कृपाराम उसकी सेवा से बहुत प्रसन्न हुए और उसको अपने काव्य के माध्यम से अमर बना दिया । राजिया को सम्बोधित करके कृपाराम ने सैकड़ों सोरठे बनाये । यही मत उचित प्रतीत होता है ।

(५)

राजिया जूसरो गाँव का निवासी था, जो कृपाराम के गाँव जूसरी के निकट ही बताया जाता है । एक बार अकाल पड़ा और जूसरो ग्राम भोजन की तलाश में खाली हो गया । उसमें एक अरोड़ा जाति का वैश्य परिवार भी था । उस वैश्य परिवार में राजिया का जन्म हुआ था । उस नवजात शिशु को जूसरी में कृपाराम के विशाल भवन के पिछवाड़े छोड़कर उसके माता-पिता अकाल का सामना करने के लिए चलते बने । कृपाराम की पत्नी ने जब उस नवजात शिशु को देखा तो उठा लाई और अपने पति को दिखाया । उन्होंने उसका नाम राजिया रखा । वह शिशु बच्चों में खेलते-कूदते बड़ा हुआ और कृपाराम के साथ रहने लगा । उनकी सेवा-चाकरी करने लगा । कवि ने उसे 'चिलमची' का कार्य सौंपा । वह कृपाराम के लिए चिलम (हुक्का) तैयार किया करता था । वह अविवाहित रहा । उसने एक दिन कृपाराम के सामने उसको (राजिया) अमर बनाने की इच्छा प्रकट की । कृपाराम ने कहा, "एक चिलम भरकर लाने पर मैं एक दूहा तुम्हारे नाम से बनाऊँगा ।"

इस प्रकार राजिये को संबोधित करके कृपाराम ने सोरठे (दूहे) बनाए और अपने सेवक राजिया को अमर कर दिया ।

उक्त लोक मान्यताओं से राजिया के जीवन परिचय के संबंध में एक झलक-सी मिलती है तथा इनसे जनमानस में राजिये की लोकप्रियता का पता चलता है । चाहे इन लोक मान्यताओं को ऐतिहासिक सत्य का आधार न मिला हो ।

कविवर कृपाराम के संबंध में भी एक विशिष्ट लोक प्रसिद्ध प्रसंग आगे प्रस्तुत किया जा रहा है, जो उनके जीवन के साथ सहज भाव से जुड़ा हुआ है ।

तीर्थराज पुष्कर पर कवि को रावराजा लक्ष्मणसिंह ने हाथी शिरोपाव आभूषण, मोती, लक्ष्मणपुरा गाँव आदि सम्मानस्वरूप भेंट किए, जिसकी पुष्टि में निम्नलिखित षट्पदी लोक प्रसिद्ध है ।

सुचि अठ्ठारासैके, आगर पुनि अठ्ठावन ।
बद असाढ़ तिथ बीज, प्रगट दिनकर दिन पावन ।।
हय गयंद सिरपाव, कड़ा भूषण मोताहल ।
सासण लछमणपुरो, जमी नेपालू साजल ।।
पुहकर सुथान मिलिया, नृपति, अति उदार सुग्रच्छ ।
कृपाराम रीझ सेखा तिलक, लहर एक दीधी सुलच्छ ।।

इससे कवि का सीकर राजदरबार में सम्मान एवं उनके काव्य-कौशल के प्रति आदर भाव प्रकट होता है ।[1]

अन्त में कहा जा सकता है कि कवि की जीवन-साधना उसके काव्य में प्रतिबिम्बित हुई है, जिसको लोक-हृदय ने अपनी रागनी मानकर स्वीकार किया है ।

जनकवि कृपाराम खिड़िया की अब तक निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हुई हैं :

१. राजिये रा सोरठा २. कवित्त चालराय का ३. चालकनेच रो नाटक ४. षट् ऋतु वर्णन ५. फुटकर रचनाएँ (गीत, कवित्त, छप्पय आदि)

उक्त सभी रचनाएँ कवि के वंशजों के पास (कृपारामजी की ढाणी में) सुरक्षित हैं ।

---

१ द्रष्टव्य :

क. राजस्थानी साहित्य सम्पदा : सौभाग्य सिंह शेखावत, पृ० ८५

ख. शेखावाटी के साहित्य का इतिहास (प्रथम खण्ड) पृ० १८३

ग. यह पद्य कवि के वंशजों के पास सुरक्षित है ।

2

युगीन परिस्थितियाँ

कविवर कृपाराम खिड़िया शेखावाटी परिमण्डल (वर्तमान में सीकर और झुंझुनूं जिले तथा भाषा तथा सांस्कृतिक इकाई की दृष्टि से चूरु जिले के रतनगढ़ संभाग तक) में सीकर संस्थान के शासक राव देवीसिंह (शासनकाल वि. सं. १८२०-१८५२) तथा उनके पुत्र राव राजा लक्ष्मणसिंह (शासनकाल वि. सं. १८५२-१८९० के) दरबार में एक नीतिनिपुण, कुशल परामर्शदाता तथा राज्य संचालन में विश्वसनीय व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित थे। वे देवीसिंह के शासनकाल में सीकर आये थे तथा लक्ष्मणसिंह के राज दरबार में एक सम्मानित और चतुर सलाहकार के रूप में रहे। कवि ने अपने दीर्घ जीवन काल (वि. सं. १८०० से १८९० तक लगभग) में विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग सम्पूर्ण काल में देश व्यापी अशान्ति, मुगलों का पराभव, पिण्डारियों के अत्याचार, 'मरहठों' और राजाओं के पारस्परिक संघर्षों, ईस्ट इंडिया कम्पनी का बढ़ता हुआ प्रभाव, राजनैतिक परिवर्तनों आदि को देखा था। उस समय राज्य-रक्षकों का ध्यान केवल अपने राज्य एवं भूमि की रक्षा, स्वामित्व की सुरक्षा और आक्रान्ताओं की शक्ति को सीमित करने पर ही आधारित था।

सीकर संस्थान (ठिकाना) का राजनीतिक सम्पर्क जयपुर, दिल्ली तथा अन्य सभी रियासतों एवं ठिकानों से था। उनमें होने वाले परिवर्तनों से शेखावाटी परिमंडल भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। अतः इसी दृष्टि से कवि के युग की राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन प्रस्तुत करना यथेष्ट समझा गया है।

राजनीतिक—कवि के आश्रयदाता के पितामह राव शिवसिंह वि. सं १७७८ में सीकर की गद्दी पर विराजे तथा वि.सं. १७८१ में सीकर को नगर के रूप में सुव्यवस्थित ढंग से बसाना प्रारम्भ किया। इनके शासनकाल में भी चोरी, डाके हुआ करते थे। राजा के कान भरे जाते थे। शाही शासन के

आक्रमण हुआ करते थे। उस समय दिल्ली में बादशाह महम्मदशाह का शासन था और महाराजा सवाई जयसिंह जयपुर के शासक थे। कायमखानीं-शेखावतों के संघर्षों से वातावरण भय पूर्ण था। फ़तेहपुर के नवाबों का चरित्र बल गिर चुका था। उनकी शक्ति क्षीण हो गई थी। इनमें परस्पर वैमनस्य बढ़ता जा रहा था। दूसरे के राज्य को हड़पने के लिए संघर्ष करना एक सामान्य बात हो गई थी। रियासतों में परस्पर युद्ध भी हो जाया करते थे, जिनसे जन-जीवन में एक अस्थिरता आ जाती थी। मराठों के आक्रमण होने लगे थे। उत्तराधिकार के लिए युद्ध होना एक सामान्य बात थी तथा राज्य लिप्सा में भाइयों की हत्या करना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। शिवसिंह के पुत्र समर्थ सिंह ने अपने भाई की हत्या की थी। मदिरा सेवन राजाओं के लिए घातक बन चुका था। सिंधी और बिलोचियों की सेना का प्रभाव भी इधर बढ़ने लगा था। राज्य रक्षा के लिये आये दिन संघर्ष होते थे। शासन परिवर्तन का भय छाया रहता था। एक दूसरे के गाँवों, भूमि एवं राज्य पर अधिकार करने की प्रक्रिया चलती रहती थी। जयपुर नरेश भी ठिकानों में अस्थिरता पैदा करने में सहायक बन जाते थे। वि.सं. १८१३ में चाँदसिंह का सीकर पर अधिकार करवाने में जयपुर नरेश माधोसिंह का हाथ था। ये ठिकानें छोटे-छोटे ठिकानों में बँटते जा रहे थे।

कवि के आश्रयदाता देवीसिंह का समय भी अस्थिरता पूर्ण था। भरतपुर-जयपुर के युद्ध में (वि.सं. १८२४ में) अनेक वीर काम आये थे, जिससे यहाँ का वातावरण कष्टदायक हो गया। यह काल 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' कहावत को चरितार्थ करनेवाला था। आये दिन आक्रमण और चढ़ाइयाँ होती रहती थी। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' की लोकोक्ति इस काल में सही सिद्ध हो रही थी। मित्रसेन अहीर ने दूसरी बार (वि.सं. १८३१ में) बिलौचियों को साथ लेकर शेखावाटी पर आक्रमण किया था। इस समय दिल्ली के शाही शासन में आलीगौहर शाह आलम (द्वितीय) बादशाह था तथा जयपुर में महाराजा सवाई प्रतापसिंह का शासन था। दिल्ली की शक्ति डूबने पर थी। इस समय नजफ़कुली खाँ का आक्रमण शेखावाटी पर हुआ। शाही सेना ने गाँवों को लूटा। 'खाटू की भूमि' पर भयंकर युद्ध हुआ, जिसने यहाँ कष्टदायक अस्थिरता पैदा कर दी। छोटी-छोटी बातों पर अपना दम्भ शान्त करने के लिए मर मिटना उस समय की वीर-संस्कृति का अंग बन गया था। इसीलिए राजस्थानी संस्कृति में 'वसुधा वीरां री वधू, वीर तिका ही बींद' को खूब गाया और कहा गया है।

उत्तराधिकार के लिए बखेड़ा करनेवाले शासक रानियों के गर्भवती होने

की बात को मिथ्या घोषित कर देते थे तथा कभी-कभी गर्भवती न होने पर भी गर्भवती होने की घोषणा करके नौ मास पश्चात् कहीं से नवजात शिशु को लाकर रानी के पुत्र जन्म की घोषणा कर देते थे और उत्तराधिकारी के उत्पन्न होने की बात का प्रचार कर देते थे। इस बात की पुष्टि दिल्ली तथा जयपुर से भी करवाने में सफल हो जाते थे। नवजात उत्तराधिकारी को मार भी दिया करते थे। इसके लिए अनेक प्रकार के षड्यंत्र होते थे। औरस पुत्र होने पर भी उसके विपरीत प्रचार कर देते थे। सीकर के राव देवीसिंह का स्वर्गवास (वि.सं. १८५२ में) होने पर उनकी रानी कान्हलोतजी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र लक्ष्मण सिंह का विरोध खण्डेला, बलारा आदि के शासकों ने यह कहकर किया कि वह (लक्ष्मणसिंह) उनका औरस पुत्र नहीं है और दूजोद के ठाकुर मोहबत सिंह के नवजात पुत्र को मँगवाकर कान्हलोतजी के पुत्र उत्पन्न होने की बात फैला दी गई। यह विवाद मूलतः विद्वेष पर आधारित था। इन बातों को लेकर होने वाले परस्पर संघर्षों का लाभ दिल्ली और जयपुर को मिलता था। ऊपर से मान्यता मिलने पर ही वह सही उत्तराधिकारी माना जाता था तथा गद्दी पर बैठना था। इस विषय में शासक पराधीन होते जा रहे थे।[1]

वि.सं. १८३८ से १८४० तक तो शेखावाटी में मराठों के अत्याचारों की पराकाष्ठा रही। शेखावाटी की शान्ति भंग हो गयी। यहाँ के गाँव-के-गाँव जला दिये गये। जन धन की अत्यधिक हानि हुई। वे मन माना कर वसूल करते थे। शेखावाटी का एक भी गाँव ऐसा नहीं बचा, जो इनके अत्याचारों की चपेट में न आया हो। मराठों की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ पूरी शेखावाटी में फैल चुकी थी।[2] अराजकता के उस युग में (मुख्यतः सन् १७९३ से १८१८ ई० तक) मराठों और उनके द्वारा पालित लुटेरे पिण्डारियों के अत्याचारों और लूटमार से पूरा राजस्थान आतंकित था। देश की जनता भूखी और नंगी कर दी गई।[3] उस समय में बामनराव नारायणराव, अम्बाजी ईंगले, बापूराव, सेंदे अमीर खान, और जमशेद खाँ आदि लुटेरों ने जो सैंदिया और होल्कर के साथ

---

१. प्रमाण तथा अधिक विस्तार के लिए द्रष्टव्य—
(अ) सीकर का इतिहास, ले० पं० झाबरमल्ल शर्मा, प्रथम आवृत्ति, वि.सं. १९७९, पृ. १०२-१०३, १०७-११०, ११५-११६;
(आ) बिसाऊ का इतिहास, ले० निरंजनलाल जोशी, हस्तलिखित प्रति (पृ. १२४-१२५, १३४-१३५, १४१-१४२)

२. बिसाऊ का इतिहास, पृ० १२०

३. डा. मथुरालाल शर्मा द्वारा लिखित 'हिस्ट्री आफ़ द जयपुर स्टेट' का महाराजा जगतसिंह के शासन काल का अध्याय।

थे, शेखावाटी की प्रजा को लूटने मारने और बरबाद करने में कुछ भी कमी नहीं रहने दी। बापूराव शिंदे ने सं. १८६६ वि. (१८०९ ई०) में नवलगढ़ पर घेरा डाला तो पिण्डारी नेता महमूद खान सं. १८६८ में (१८११ ई०) में नवलगढ़ पर आ धमका।[1]

मराठों के आक्रमणों से भयभीत होकर देशी रजवाड़ों ने अंग्रेजों से संधि की। ईस्ट इंडिया कं. अपने व्यापारिक वेश को हटाकर धीरे-धीरे शासन विस्तार में क़दम रखने लगी थी। ब्रिटिश व्यापारी शासकों ने उस समय आगे आकर पूरे राजस्थान में शान्ति स्थापना के लिए प्रयत्न किये। राजस्थान के स्वाधीन नरेश धीरे-धीरे ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ मित्र राज्य के रूप में संधि सूत्र में आबद्ध हो गये। जयपुर के साथ अंग्रेजों की प्रथम संधि मार्क्विस वेलेस्ली के समय वि.सं. १८६० (स. १८०३ ई०) में हुई। आगे चलकर दूसरी संधि सन् १८१८ ई० (वि.सं. १८७५) में मिस्टर सी.टी. मेटकाफ़ के द्वारा सम्पन्न हुई। इसके पहले खेतड़ी नरेश राजा अभयसिंह लार्ड लेक के साथ मित्रता के बंधन में बँध चुके थे।

अंग्रेज़ों के साथ देशी रजवाड़ों की संधियाँ होने पर ही राजस्थान की जनता को मराठों के अत्याचारों से छुटकारा मिला। एक नये युग का आरम्भ हुआ। शेखावाटी में ही नहीं पूरे राजस्थान में रक्तपात और अराजकता का युग समाप्त हुआ। परन्तु आगे चलकर राजाओं-ठिकानेदारों के आन्तरिक मामलों में ब्रिटिश हस्तक्षेप का सूत्रपात हुआ। जयपुर नरेश महाराजा जगतसिंह के देहावसान के बाद जयपुर के उत्तराधिकारी को लेकर बड़ा विवाद उपस्थित हुआ। उसमें ब्रिटिश अधिकारियों ने हस्तक्षेप किया।[2] धीरे-धीरे राजपूताना के सभी नरेशों और ठिकानेदारों के शासन कार्य में अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ता गया।

ये राजदरबार, अन्तःपुर, दरबारी लोग आदि सभी कुचक्रों के शिकार होते जा रहे थे। छोटे-छोटे गढ़ उपद्रवकारियों के अड्डे बन गये थे। शेखावाटी में लुटेरों के उपद्रवों की जाँच के लिए राजपूताना के प्रथम ए.जी.जी. कर्नल लोकेट यहाँ आये। उनकी रिपोर्ट के आधार पर यहाँ के क़िले (सन् १८३१-३२ ई० में) तोड़े गये और शेखावाटी में स्थायी शान्ति के लिए सन् १८३४-३५ में 'शेखावाटी ब्रिगेड' नामक एक सैना मेजर फारेस्टर की अधीनता में शेखावाटी में रहने लगी। सन् १८३६-३७ में यह 'शेखावाटी ब्रिगेड' जयपुर के अधीन

१. मण्डावा पाना ठा. पदमसिंह की बही के उल्लेख (नवलगढ़ का इतिहास) ठा. सुरजनसिंह शेखावत, पृ० ५६-५७
२. सीकर का इतिहास, पृ० ११५

हो गई। इस प्रकार यहाँ के शासकों की परस्पर संघर्ष वृत्ति से क्षीण हुई शक्ति पर आगे चलकर अंग्रेजों का अधिकार हो गया और उनका शासन व प्रजा पर दबाव बढ़ता गया। यहाँ का राजनैतिक ढाँचा चरमरा उठा था।

शेखावाटी को अशान्त क्षेत्र मानकर सन् १८३७ ई० (वि.सं. १८९४) में राजपूताना के ए.जी.जी. कर्नल एल्विस ने शेखावाटी क्षेत्र को सीधे ब्रिटिश नियन्त्रण में ले लिया।[1] यह काल इस क्षेत्र की शासन व्यवस्था के लिए उथल-पुथल तथा बदलाव का था। वि.सं. १९०० के आते-आते यहाँ के कई ठिकाने तो चार-चार पाँच-पाँच 'पानों' (छोटे-छोटे शासन क्षेत्र) में विभक्त हो चुके थे।

वीर-समाज के अपने पूर्व निर्दिष्ट एवं मान्य आदर्श भी थे, जिनका पालन सिर देकर भी किया जाता था। शरणागत-रक्षा, वचनपालन, प्रतिशोध लेना, स्वामिधर्म-पालन, राज्य रक्षा, धरती प्रेम, मरणपर्व, गो-देवालय रक्षा, दीनहीन की सहायता आदि ऐसे प्रसंग थे, जिनपर वीर हँसते-हँसते बलिदान हो जाया करते थे। प्रजा-पालन तथा उसकी रक्षा सर्वोपरि कर्तव्य था। वे प्रबुद्ध जनों एवं धार्मिक वर्ग को अपने राज्य में लाकर बसाया करते थे और राज्य की उन्नति के लिए चिन्तित रहते थे। अपनी स्वयं की विकृतियों के वे शिकार अवश्य रहते थे परन्तु प्रजा की सुरक्षा-संरक्षा करने के लिए वे प्रथम पुरुष हुआ करते थे। समाज को विकृतियों से मुक्त रखना, वे अपना कर्तव्य मानते थे और कर्तव्य पालन में प्राणोत्सर्ग करना उनके लिए मामूली बात थी। यही उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों का उज्ज्वल पक्ष था जिससे राजस्थान गौरवान्वित हुआ और वीर-संस्कृति का निर्माण हुआ।

सामाजिक—हिन्दू-मुस्लिम सभी जाति के लोग समाज में थे। बाल-विवाह और बहु विवाह चालू थे। पुनर्विवाह उच्च जातियों में नहीं होता था। समाज में विधवा विवाह एवं नाते की प्रथा कहीं-कहीं चालू थी। परिवार में एकतन्त्र का प्रभाव था। समाज में उत्तराधिकार में सम्पत्ति का बराबर बँटवारा हुआ करता था। समाज में पुत्र का बड़ा महत्त्व था। पुत्री का कोई हिस्सा और महत्त्व नही था। कन्या-हत्या जैसी घटनाएँ हो जाती थी। कन्यादान का बड़ा महत्त्व था भात (मायरा) भरने का विशेष सामाजिक एवं धार्मिक महत्त्व था। मृतक संस्कार में बिरादरी भोज 'ब्रह्मपुरी' का प्रचलन था। स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। प्रस्तुत कवि ने भी स्त्रियों की निम्न स्थिति का संकेत दिया है। 'बेटी का बाप, दयनीय स्थिति का वाचक बना हुआ था। वैसे बेटी की विदाई का दृश्य बड़ा करुणाजनक होता था। परन्तु नारी स्वतन्त्र नहीं थी। दुहागिने

१. नवलगढ़ का इतिहास, पृ० ९ (खरीता माह बदी १४ सं. १८९३)

एवं विधवा की स्थिति दयनीय थी। घूँघट और पर्दे की प्रथा थी। लड़की बेचने तक का रिवाज भी था। सामाजिक असुरक्षा के कारण वह पुरुष के अधीन थी।

सती प्रथा (जो सन् १८२९ में बन्द हुई), जूझार होना, जीवित समाधि लेना, दासप्रथा (दास-दासी) धरना, आदि कतिपय मध्यकालीन परम्पराएँ थी जो समाज को प्रभावित करती रहती थी। धरना मुख्यतः चारण दिया करते थे। कवि के आश्रयदाता राव लक्ष्मणसिंह के साथ एक रानी सती हुई थी। उन्होंने सात विवाह किये थे तथा आठ दासियों को पासवान बनाकर रखा था। उनके पिता देवीसिंह के तीन रानियाँ थी।

समाज में वणिक वर्ग के बाद ब्राह्मण, भाट, चारण आदि बुद्धिजीवी वर्ग में आते थे। चारण भाटों का संबंध राजघरानों से था। उनको राजघरानों से 'शासन' एवं 'उदक' में भूमि मिलती थी। ये क़लम और करवाल के धनी थे। इनकी आजीविका राज से जुड़ी हुई थी। ब्राह्मणों का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था। ये श्रद्धा-सम्मान से देखे जाते थे। इनके ज्ञान का गौरव सर्वत्र फैला हुआ था। ये प्रायः ज्योतिष, वैद्यक, कर्मकाण्ड, कथावाचन आदि-कर्म किया करते थे। ये पुस्तक लेखन का कार्य भी किया करते थे। जैनमुनि और आचार्यों का भी समाज में महत्त्व था। चित्रकारों का भी समाज में सम्मान था। नट, भाँड, नक़लची आदि जातियों के लोग मनोरंजन के लिए प्रमुखता से जाने जाते थे। समाज में श्रमिकों की स्थिति अच्छी नहीं थी। अधिकांश लोग ऋणग्रस्त रहते थे। बेगार-प्रथा जोरों पर थी। ताजा लाना ताजा खाना श्रमिकों की चर्या थी। उनकी स्थिति पर किसी को शोच नहीं था। एक लकीर पर समाज के श्रम साधक चल रहे थे।

'बात का सवाल' का भाव प्रबलता पर था। जाति केन्द्रित पंचायतें थी। उनका निर्णय मान्य होता था। सामाजिक कार्यों में इनका प्रभाव था। जागीरदार का अपने शासन क्षेत्र पर पूरा प्रभुत्व था। राजा के नाम की दुहाई का विशेष महत्त्व था। राजघराने के लोगों का आतंक भी कभी-कभी बढ़ जाया करता था। शासक के रुष्ट होने पर दोषी को देशनिकाला दे दिया जाता था। आवश्यकता पड़ने पर जाति, समाज, गाँव एकजुट होकर आपत्तियों का सामना किया करते थे। विवाह, रोग, शोक, उत्सव, कृषि, चोरी, धाड़ा आदि के समय इनका संगठन देखने योग्य होता था। नैतिकता का मूर्त्तरूप गाँव की बहू-बेटियों के साथ व्यवहार और लेन-देन के समय प्रकट होता था, जो एक आदर्श होता था। इस व्यवहार में एक विश्वसनीयता थी। इतना सब कुछ होते हुए भी ये आदर्श कभी-कभी व्यक्तिगत कारणों से बिखर जाया करते थे।

राजपूत परिवारों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। ये कृषि-जीवी भी होने लगे थे परन्तु राजा निकट रहने में ही अपना सम्मान समझते थे। राजघरानों में बहुपत्नीत्व के कारण कलह रहने लगा था। ये अधिकतर ऋणग्रस्त रहते थे। प्रतिशोध की भावना इनमें प्रबलता से आ गई थी। जातीय संघर्ष में इनकी शक्ति क्षीण होती रहती थी। इनमें संगठन-शक्ति का अभाव होने लगा था। परदे की प्रथा इनके लिए कष्टदायक होती जा रही थी। भूमि-पति होने की लालसा इनकी एक कमजोरी थी, जिसके कारण इनमें परस्पर वैमनस्य, द्वेष, ईर्षा आदि के भाव आ गये थे। इसके लिए पिता-पुत्रों-भाइयों का वध तक कर देते थे।

सारा समाज सामंती एवं पूँजीवादी ढाँचे में जकड़ा हुआ था। उससे अलग हटकर सोचने का समय किसी के पास नहीं था। भाग्यवाद की चपेट ने सबको संतोष की सुरा पिलाकर शून्यवत कर रखा था। परिवार, जाति, समाज, सभी एकतंत्रीय व्यवस्था से संचालित हो रहे थे। कवि के युग की सामाजिक स्थिति पर धर्म की छाया मँडराती रहती थी तथा शोषण का चक्र घूमता रहता था।

धार्मिक—उस युग में राजस्थान का जनमानस धर्मप्राण रहा है। इस पुण्य-धारा को प्रवहमान रखने में वह सदा उदार और सहिष्णु रहा है। धर्म-रक्षा में यहाँ के वीरों और रणबाँकुरों ने सदा युद्ध और साके किये हैं। गौ-धर्म रक्षार्थ मरण त्योहार मनाना इस युग का प्रमुख लक्षण था। ऐसे वीरों के गुणगान से यहाँ के साहित्य-ग्रंथ भरे पड़ें हैं तथा यहाँ का लोक-साहित्य उनका कीर्तिगान करते नहीं थकता। 'झूझारों' की पूजा होती थी। यहाँ के शासकों, दानवीरों और पुण्य-प्रवीणों ने श्री रघुनाथजी, गोपीनाथजी, गोविन्ददेवजी, बालाजी, महादेवजी, राधावल्लभजी आदि के नामों से अनेक मन्दिर बनवाये। इनके अतिरिक्त कुएँ, तालाब, बावड़ी, धर्मशाला आदि पुण्य भाव से बनवाये गये। ये सभी धर्म के स्तम्भ और पुण्य के प्रतीक माने जाते थे। यहाँ 'धरम-छेतर' (धर्मक्षेत्र) भी दीनहीन की सहायतार्थ खुले हुए थे, जिनमें उनके भोजन-पानी व कहीं-कहीं आवास की सुविधा भी रहती थी। गो-सेवा से कमाया हुआ पुण्य स्थायी माना जाता था। ये सब 'कीरत-कमठाण' थे। गोचर भूमि, तालाब और मंदिरों के लिए भूमि उदार भाव से दी जाती थी। आज 'बीड़' कहलाने-वाली भूमि इसी भाव से छोड़ी गई भूमि के अन्तर्गत आती है। सार रूप में धार्मिक दृष्टि से यहाँ सभी धर्मों, मतों, संप्रदायों में सद्भाव और सहिष्णुता थी।

सांस्कृतिक—कवि-काल में राजदरबार कला के केन्द्र बने हुये थे। इन्हीं के अनुसरण पर समाज के समर्थ लोग भी अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार 'सांस्कृतिक आयोजन' किया या करवाया करते थे। कलावत (कलावंत) जाति में ऐसे आयोजनों के लिए घराने बनते जा रहे थे। इनमें नर्तकियाँ भी सम्मिलित थी। संगीत का अच्छा प्रचार था। देव-मंदिरों में भी नृत्य-संकीर्तन होता था।

जन साधारण में संगीत-नृत्य के प्रति अच्छी अभिरुचि थी। विशेष अवसरों पर समर्थ लोग ख्याल मंडलियों के द्वारा ख्याल का आयोजन करवाते थे, जिसमें दर्शकों से कुछ भी नहीं लिया जाता था। ख्याल एक प्रकार का लोकनाट्य है, जिसमें आदि से अंत तक नृत्य और संगीत होते हैं। शेखावाटी के ख्याल प्रसिद्ध हैं। इन ख्यालों के पूर्व रूप अधिक विकसित नहीं रहे होंगे परन्तु फड़-गायन तो बहुत ही पुराना है जिसमें एक चित्रपटी के साथ किसी वीर का जीवन चरित्र गाया जाता है। इसके गाने वाले भोपा-भोपी कहलाते हैं। लोक गायक रावण हत्थे पर वीर गीत भी सुनाते थे। होली आदि के अवसर पर होने वाला गींदड़नृत्य बड़ा पुराना है। महिलाएँ इस अवसर पर घरों में लूहरनृत्य का आयोजन करती थीं। मेलों के अवसर पर विविध देवी-देवताओं के गीत और हरजस आदि गाये जाते थे। महाभारत, निहालदे, पाबूजी के पवाड़े, मायरो 'व्यावलो' आदि जन-काव्य एवं भक्ति-काव्य गाये जाने का भी सुन्दर रिवाज रहा हैं। वीर भूमि के निवासियों का वीर गीतों में विशेष रुचि रखना स्वाभाविक है। हर एक मांगलिक अवसर पर लोक गीतों का गाया जाना तो महिला समाज के लिए एक प्रमुख कर्तव्य रहा है। इस प्रकार जन साधारण में संगीत की रस धारा बराबर चलती रही है।

राजघरानों अथवा सेठ साहूकारों के द्वारा बड़े-बड़े किले और कोठियाँ हवेलियाँ आदि बनवाये जाते थे, जिनको कलापूर्ण भित्तिचित्रों से सुसज्जित करने का एक अनिवार्य विधान था। देव भवनों का निर्माण करवाने में भी समर्थ लोग विशेष रुचि लेते थे। यही कारण है कि उस समय इस प्रदेश में मूर्तिकला भी उन्नत अवस्था में रही है। यहाँ की प्राचीन मूर्तियाँ विश्व विख्यात हैं, जैसा कि हर्ष, तूंदा (झूंझनूं) और नरहड़ आदि से प्राप्त प्रस्तर प्रतिमाओं के विविध विवरणों से स्पष्ट है।

इसी प्रकार राजघरानों में कविजन अपना काव्य कौशल-दिखलाते थे, जिससे जन साधारण को भी प्रेरणा मिलती थी और मनोरंजन होता था। लोक-जीवन में रमे हुए सुभाषित अथवा सूक्तियाँ इसके प्रमाण हैं। कोई भी व्यक्ति कोई विशेष कार्य कर दिखलाता था तो उसके संबंध में 'साख' का दूहा अवश्य ही लोक प्रचलित हो जाता था।

मेलों में जन साधारण की बहुत अधिक अभिरुचि थी। समय-समय पर देव-स्थानों आदि पर छोटे-बड़े अनेक मेले लगते थे, जिनमें दूर-दूर से लोग आकर सम्मिलित होते थे। ये मेले देव-भक्ति के साथ ही मनोरंजन के भी अच्छे अवसर थे। इनमें गोगाजी से संबंधित मेले तो गाँव-गाँव में लगते थे। गणगौर और तीज के मेले बड़े उत्साह के साथ आयोजित होते थे, जिनमें घोड़ों, ऊँटों की दौड़, कुश्ती आदि देखने लायक़ होती थी।

इस प्रकार जन साधारण की कलात्मक अभिरुचि बनी रहती थी और लोगों को आर्थिक असुविधा का भान भी नहीं होता था। श्रम को सरस बनाने के लिए यह स्थिति बड़ी उपयोगी रही। इससे सद्गुणों का प्रचार होता था तथा जन जीवन में सरसता बनी रहती थी।

मृगया, उद्यान-क्रीड़ा, हिंडोला आदि भी मनोरंजन के साधन थे। चौपड़, शतरंज, चरभर, गुल्लीडंडा, मारदड़ी आदि अनेक खेल थे, जिनसे समाज का मनोरंजन होता था। बच्चों के खेल अपनी सुन्दर स्थिति रखते थे। संस्कृति-निर्माण में इनका भी योगदान था। नट, बाजीगर, भांड, कालबेलिया, रामलीला, रासलीला, झाँकी, कठपुतली का खेल, कच्छीघोड़ी आदि भी मनोरंजन के अच्छे साधन थे। इन सबका समग्र रूप राजस्थानी संस्कृति के रूप में कवि के सामने था।

आर्थिक और व्यापारिक—उस समय समाज की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं थी। कृषि प्रमुख धंधा था। इसके साथ पशुपालन और खेती के काम में आनेवाले औजारों का धंधा चलता था। अन्य छोटे घरेलू उद्योग-धंधे भी चलते थे, जिनमें रेजीगाढा, ऊन के कम्बल, लूँकार आदि बनाने के धंधे प्रमुख थे। खेती-बाड़ी का कार्य माली लोग किया करते थे। कृषि पर राज्य-कर वसूल करता था। मालगुज़ारी प्राय: चौधरियों के माध्यम से वसूल होती थी। कृषक आढ़तियों के माध्यम से अनाज बेचते थे। अधिकतर माल ढुलाई ऊँटों और बैलगाड़ियों से होती थी। ऊँटों की क़तारें चलती थी। ऊन का व्यापार होता था। रँगाई-छपाई, घड़ाई-जड़ाई का काम भी होता था। लुहार, कुम्हार, मोची, चमार, खटीक, रैगर, तेली, खाती, खरादी आदि सभी अपना-अपना धंधा करते थे। व्यापारी वर्ग धनाढ्य था। इनका व्यापार दूर-दूर तक चलता था। ये व्याज का धंधा भी करते थे।

उस समय वेतन कम था। आम आदमी की स्थिति अच्छी नहीं थी। धन को ज़मीन में गाड़कर रखने की प्रथा थी। 'न्योली' का प्रयोग भी होता था। खज़ाना इधर से उधर ऊटों व गाडों पर लादा जाया करता था। हुण्डी का प्रयोग खूब होता था। समाचार भेजने के लिए दूत, हरकारे और क़ासिद होते

थे। उनका पारिश्रमिक दूरी और समय के अनुसार तय होता था। उद्योगपतियों का समाज और राज में अपना पूरा वर्चस्व था।

वर्षा न होने पर अकाल की स्थिति का सामना करना पड़ता था। लोगों को स्थान छोड़कर मालवा की ओर जाना पड़ता था। चारे की कमी के कारण पशुओं की स्थिति दयनीय हो जाया करती थी। कृषि सबका मूलाधार थी।

एक परम्परित शोषण प्रक्रिया प्रभावी थी। कृषक, मजदूर हों या हाथ के कारीगर, सभी सामाजिक एवं आर्थिक शोषण के शिकार थे। कर्जा आगे से आगे चलता रहता था। खर्चीली सामाजिक परम्पराओं के कारण भी अर्थाभाव रहता था।

कवि का रचना-क्षेत्र मुख्यतः शेखावाटी संभाग था जो खेती, पानी आवागमन के साधन, आय के अन्य एवं विविध स्रोतों के अभावों से ग्रसित था। आर्थिक एकतन्त्र का बोलबाला था। चार माह की खेती पर ही आठ माह का भार लदा हुआ था। गरीबी का यही मूल कारण था। कवि ने इस अभावग्रस्त क्षेत्र को देखा था। इसलिए उसके काव्य में ये स्वर अप्रकट रूप में व्यक्त हुए हैं।

फिर भी रेगिस्तानी भूख के स्वर भाग्यवादी होकर संतोष से गूँज रहे थे। यहाँ के लोग हर स्थिति से जूझना जानते थे।

3

प्रतिनिधि रचनाएँ

(क) राजिये रा सोरठा

कविवर कृपाराम मूलतः नीति कवि के रूप में प्रख्यात हैं। राजनीति पर भी उन्होंने बड़ी कुशलता से सोरठे लिखे हैं। राज और समाज दोनों की गहराइयों का मापन उन्होंने अपने सोरठों में बड़ी दक्षता से किया है।

नीति परक काव्य लिखने की भारत में सुदीर्घ परम्परा रही है, जिसका उद्गम वैदिक साहित्य से जुड़ा हुआ है। राजस्थानी एवं हिन्दी भाषा के उद्गम तथा विकास के पूर्व वैदिक साहित्य, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में पर्याप्त और व्यापक नीति-काव्य का सृजन हो चुका था। इसका राजस्थानी और हिन्दी के नीति-काव्य पर भी गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

नीति-काव्य की पूर्व परम्परा अपने आप में एक स्वतन्त्र एवं विस्तृत विषय है, जिस पर गहन अध्ययन के साथ विस्तार से लिखा जा सकता है परन्तु यहाँ यह अभीष्ट नहीं है।

यहाँ इतना ही प्रकट करना पर्याप्त है कि वैदिक साहित्य से राजस्थानी भाषा के उद्गम एवं विकास तक नीति-काव्य की यह लम्बी परम्परा कवि के काल तक एक अटूट एवं प्रभावशील परम्परा के रूप में विकासमान रही है।

कृपारामजी इस परम्परा से प्रभावित हैं तथा उन्होंने अपनी क़लम के कमाल से इस परम्परा को और अधिक सशक्त, सुरुचिपूर्ण एवं सुविकसित बनाया। उनके द्वारा रचित नीति-साहित्य कोरा उपदेश मात्र न रहकर हृदयगत भावों में एक उद्वेलन उत्पन्न करनेवाला भाव पुंज कहा जाएगा। कवि के हृदय से निकले ये भाव-सूत्र ही 'राजिये रा सोरठा' के नाम से साहित्य में समादृत हुए।

कवि की यह एकमात्र ऐसी रचना है, जिसके आधार पर वह लोक प्रसिद्ध हो गया है। उसकी अन्य रचनाएँ तो पिछले कुछ वर्ष पूर्व ही लेखक द्वारा

सर्वप्रथम प्रकाश में आई हैं।[1] परन्तु कवि के सोरठे लगभग सौ वर्षों पूर्व प्रकाश में आ चुके थे। यह एक विशिष्ट बात है कि कवि के कंठ से निकलने के बाद इन सोरठों ने अपना आसन जन-कंठ पर जमा लिया और वे आज तक उसी आनन्दानुभूति के साथ विचरण करते आ रहे हैं।

कवि के सोरठों की लोकप्रियता उनके काव्य-सौष्ठव एवं शब्द-शिल्प से प्रभावित होकर अनेक विद्वानों ने उनके सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित करवाये। कुछ ने इन सोरठों को अपने विविध संग्रहों में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। इससे इन सोरठों का महत्त्व प्रकट होता है। इन सोरठों का यह प्रकाशन क्रम इस ईस्वी शताब्दी के पूर्व से ही चालू हो गया था, जिसका संक्षिप्त विवरण आगे की पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा रहा है।[2]

(१) 'दूहा राजिये रा' का एक स्वतंत्र संस्करण वि.सं. १९५१ (सन् १८९४ ई०) में जोधपुर के गौड़ पूर्णचन्द और थानवी शिवदान ने प्रकाशित करवाया था। इसमें १२३ सोरठे (दूहे) हैं। इसे प्रथम संस्करण कहा जा सकता है।

(२) 'दूहा राजिये रा' नाम से एक स्वतंत्र संस्करण मारवाड़ के गाँव मथानिया के बारहठ पीरदान ने तैयार किया था, जो पं. रामकरणजी के प्रताप प्रेस में वि.सं. १९५६ के कार्तिक वदी ८ (सन् १८९९ ई०) को प्रकाशित हुआ। इसमें १२३ सोरठे हैं।

(३) शकुन रत्नावली ग्रंथ में 'शिक्षा वाक्य' शीर्षक से बीकानेर के महोपाध्याय यति रामलाल ने वि.सं. १९६५ (सन् १९०८ ई०) में राजिये के सोरठे प्रकाशित करवाये। यह स्वतंत्र संस्करण नहीं था। इसमें १२३ सोरठे संकलित किए गए थे। इसके अन्त में लिखा है 'कृपाराम चारण कृत राजिया चाकर उद्धृत प्रस्ताविक संपूर्णम।'

(४) 'प्राचीन सोरठा संग्रह' नामक ग्रंथ बीका चतरसिंह राठोड़ ने सम्पादित कर सं. १९७३ (सन् १९१७ ई०) में प्रकाशित करवाया। इसमें राजिये के १५३ सोरठे प्रकाशित हुए हैं। यह ग्रंथ सरस्वती प्रेस, भावनगर से

---

१. (अ) जसवन्त चन्द्रिका, शार्दूल संस्कृत विद्यापीठ, बीकानेर की मुख पत्रिका वर्ष १३-१४, अंक १३-१४ में प्रकाशित।
(ब) वरदा १३/४ में सभी रचनाएँ स्वयं लेखक द्वारा सर्वप्रथम प्रकाशित (बिसाऊ)

२. (अ) साधना, डूण्डलोद, वर्ष, १४, अंक १४, श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।
(ब) राजिया रा दूहा—श्री नरोत्तमदास स्वामी, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण १९८० की भूमिका।

प्रकाशित हुआ । इसी में एक सोरठा जोधपुर के महाराजा मानसिंह का राजिया को सम्बोधित करके कहा हुआ है । इसके सोरठों की कुल संख्या १५४ है ।

(५) 'राजिये के सोरठों' का हिन्दी अर्थ सहित एक स्वतंत्र संस्करण जोधपुर के स्वर्गीय जगदीश सिंह गहलोत ने वि.सं. १९८२ (सन् १९२५ ई०) में प्रकाशित करवाया । यह एक अच्छा संग्रह है । इसमें सोरठों की संख्या १४० रही । उन्होंने लगभग ५०० सोरठे होने का अनुमान लगाया था परन्तु उतने अभी मिल नहीं पाये हैं । इस संग्रह के सभी सोरठे सुनकर ही संकलित किये गये थे । इसका नाम 'प्राचीन सोरठा संग्रह' रखा गया ।

(६) 'राजिया काव्य' नाम से फतेहपुर शेखावाटी के श्री गोपाल दिनमणि ने वि.सं. १९९४ (जून सन् १९३७ ई०) में एक स्वतंत्र संस्करण हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करवाया, जिसमें सोरठों की संख्या १३५ रही । यह साहित्य सुमन माला, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है । मगर इसमें प्रक्षिप्त सोरठों की संख्या अधिक है ।

(७) 'विविध संग्रह' नामक ग्रंथ मलसीसर के ठाकुर भूरसिंह शेखावत ने सम्पादित किया । इसकी तृतीयावृत्ति वि.सं. २००० (सन् १९४३) में प्रकाशित हुई, जिसमें विविध सोरठे, कवित्त, सवैया आदि संकलित किये गये हैं । इसमें अलग-अलग विषयों के अन्तर्गत राजिया के सोरठे भी प्रकाशित किये गये हैं । इनकी संख्या ३४ रही है ।

(८) 'आनन्द संग्रह बोध' नामक ग्रंथ अलवर के मोतीलाल जी ने संकलित करके वि.सं. २००० (सन् १९४३) में प्रकाशित करवाया । उसमें कुल २१ सोरठे प्रकाशित हुए हैं । यह सोरठों का स्वतंत्र संस्करण नहीं है ।

(९) 'मारवाड़ का राजिया' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका मुरलीधरजी केजड़ीवाल ने प्रकाशित करवाई । इसमें राजिया के सोरठे संग्रहीत हैं ।

(१०) 'राजिया के सोरठे' नाम से एक संस्करण विक्रम संवत् २०१४ में अचल सिंह भाटी ने प्रकाशित करवाया । यह जोधपुर से प्रकाशित हुआ । इस संग्रह में १५३ सोरठे हैं । इनका हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है । इसके परिशिष्ट में राजिये को सम्बोधित करते हुए अन्य कवियों के भी ५ सोरठे और हैं ।

(११) 'राजिये रा दूहा' नामक एक उपयोगी संस्करण श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने नवयुग ग्रंथ कुटीर, बीकानेर से प्रकाशित करवाया । इसमें हिन्दी अर्थ दिया गया है तथा सोरठों को अकारादिक्रम से प्रकाशित करवाया गया है । इसमें सोरठों की संख्या १६५ है, जो अबतक प्रकाशित संस्करणों की तुलना में सर्वाधिक लोकप्रिग है । श्री स्वामीजी ने इसी का एक सुन्दर संस्करण सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नयी दिल्ली (प्रथम संस्करण, १९८०) से भी प्रकाशित

करवाया है, जो एक उत्तम प्रकाशन है। इसमें १६१ सोरठे भावार्थ सहित प्रकाशित हैं।

इनके अतिरिक्त अनेक रूपों से राजिया के सोरठे प्रकाशित होते रहे हैं। मुख्यत: कर्नल पाउलेट द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद करके एक संग्रह प्रकाशित करवाने की सूचना उल्लेखनीय है।[1] जयपुर के पाक्षिक 'कर्मठ राजस्थान' में भी 'राजिये रा दूहा' नाम से स्वामीजी के संकलन के समान ही अकारादि क्रम से धारावाहिक रूप में छपे हैं। इन सबके अन्त में अप्रैल १९८५ में 'राजिये रा सोरठा' का सुसम्पादन करके डा. मनोहरजी शर्मा ने एक विशेष महत्त्वपूर्ण संस्करण प्रकाशित करवाया। इसमें सोरठों की संख्या १६१ है। इनका विषयानुसार वर्गीकरण किया गया है। इनका ऐसा वर्गीकरण सर्वप्रथम ही देखने में आया है। यह सामग्री 'मरुभारती' (३३/१) पिलानी के 'कृपाराम खिड़िया विशेषांक' में प्रकाशित हुई है।

सोरठों के इस सम्पूर्ण प्रकाशन-विवरण से इनके प्रति लोक-रुचि तथा विद्वानों का आकर्षण प्रकट होता है, जो कवि के लिए एक गौरव की बात है।

ये सोरठे जन-जीवन में इतने घुल-मिल गये हैं कि इनकी प्रामाणिकता का पता लगाना भी एक दुसाध्य कार्य हो गया है। इस सुदीर्घ अवधि के प्रकाशन विकास क्रम में १२३ से बढ़कर १६५ सोरठे ही प्रामाणिकता के विश्वास के साथ विद्वानों द्वारा विभिन्न संस्करणों में प्रकाशित करवाये गये हैं। इनकी कोई प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति अभी तक नहीं मिल पाई है। लोक-मुख से सुनकर ही इनका संग्रह-प्रकाशन हुआ है।

राजस्थानी साहित्य के छंद शास्त्र के अनुसार इसे 'सोरठियो दूहो' कहा जाता है। यह सर्वाधिक लोकप्रिय छंद माना गया है। इसलिए इसकी लोक प्रसिद्धि में कहा गया है —

सोरठियों दूहो भलो, भल मरवण री बात।
जोवन छाई धण भली, तारां छाई रात॥

सोरठिया दूहा-सोरठा-लुभावना होता है, मरवण (सुप्रिया) की बात लुभावनी होती है, यौवन से भरी-पूरी धन्या (धण-पत्नी) लुभावनी होती है (और) तारों से भरी-पूरी रात्रि मनमोहक होती है। इसी प्रकार दोहे का महत्त्व बताया गया है :—

गुण सागर दोहो धणी, गाह महेली सार।
गीत कवित्त प्रधानड़ा, बीजा पहरेदार॥

---

१. साधना (डूण्डलोद), वर्ष १४, अंक १४, पृ० १० (श्री अगरचन्द नाहटा का लेख)

काव्य जगत में गुणों का सागर दोहा राजा (स्वामी) है, गाथा अन्तः पुर की शिरोमणि पटरानी है। गीत और कवित्त (छप्पय) प्रधानमंत्री है और शेष सभी छंद पहरेदार सैनिक, रक्षक हैं।

सोरठा राजस्थानी कवियों का प्रिय छंद रहा है। इसमें प्रभावोत्पादकता, गहन गंभीरता, अनुप्राणित करने की विशिष्ट क्षमता होती है, तभी यह इतना लोकप्रिय हो पाया है। कविवर कृपाराम ने इस छंद का चयन करके अपने काव्य-कौशल को सार्थक बनाया है।

सोरठों की समीक्षा करने की दृष्टि से अध्ययन करने पर प्रकट होता है कि कवि ने समाज के समग्र स्वरूप को निकट से निरखा-परखा है, तभी वह समाज के कार्यकलापों का सटीक चित्रण करने में सक्षम हो सका है। कवि ने अपने काव्य में अनेक विषयों को लिया है, जिनका नामोल्लेख निम्न प्रकार से किया जा सकता है :

१. मानव मन का चित्रण
२. व्यक्तित्व एवं गुणग्राहकहीनता
३. शूरवीर-कायर
४. चतुर-मूर्ख
५. दातार-कृपण
६. सज्जन-दुर्जन
७. सच्चा व कपटी मित्र
८. अन्य सूक्तियाँ
९. शासक-समाज
१०. नीति कथन
११. भक्तिपरक सोरठे
१२. राजस्थानी रंगत
१३. विविध सोरठे आदि।

आगे की पंक्तियों में इनका संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) मानव मन का चित्रण

कवि मानव-मन का पारखी था। इसलिए जन-मन के भावों में उसकी गहरी पैठ थी। उन्होंने अपने सोरठों में मानव हृदय के काले पर्दे कृतघ्नता, स्वार्थपरता, दुर्जन-मन का वर्णन, छल-छिद्र आदि अनेक मानवीय कमजोरियों का चित्रण किया है। दुष्ट-मन में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता, कवि ने लिखा है। देखिये –

अहला जाय उपाय, आछोड़ी करणी अहल ।
दुसट किणी ही दाय, राजी हुवै न, राजिया ॥

—दूसरों की सम्पत्ति देखकर उसका मन क्रोध से जल उठता है। उसे वह अपनी मृत्यु ही मानता है। पर सम्पत्ति एवं वैभव उसके मन को विचलित कर देते हैं, दुखी कर देते हैं –

मानै कर निज मीच, पर-सम्पत देखै अपत ।
निपट दुखी ह्वै नीच, रीसां बल-बल, राजिया ॥

—स्वार्थ के आधार पर प्रेम करनेवाले, लड़नेवाले, बदलनेवाले मनुष्यों के व्यवहार पर कवि ने धूल डालने की कहते हुए उनसे अलग रहने के लिए कहा है। ऐसे 'मतलबी-यार' का चित्रण देखिए –

पल-पल में कर प्यार, पल-पल में पलटै परा ।
लानत दे ज्यां लार, रजी उडावो, राजिया ॥

कृतघ्न मन की भर्त्सना को कवि के शब्दों में देखिये –

कीधोड़ा उपकार, नर क्रितघण मानै नहीं ।
लानत दे ज्यां लार, रजी उड़ावो, राजिया ॥

कवि ने समाज-कंटकों, दुर्व्यसनियों, दुष्टों और छलछिद्रों को जितने कठोर शब्दों में फटकारा है, वे सब कवि-मन की पीड़ा को प्रकट करते हैं। कवि ने दुर्जन-हृदय का जितना वर्णन किया हैं, उतना अन्य किसी का नहीं किया। जन-कण्ठ ने ऐसे सोरठों को सँजोकर रख रखा है।

(२) व्यक्तित्व एवं गुण-ग्राहकहीनता

मनुष्य के व्यक्तित्व की हीनता कवि को बहुत अखरी है। इस बात को कवि ने अनेक प्रकार से प्रकट किया है। गलियों में शूरवीर, समर में सियार रहनेवाले उमरावों के प्रति कवि ने कहा है कि ऐसे व्यक्तित्वहीन लोग केवल रोटियों के बदले भी महँगे हैं –

समर सियाल सुभाव, गलियारा गाहड़ करै ।
इसड़ा तो उमराव, रोट्यां मुहँगा, राजिया ॥

—शेर का शिकार बलवान ही कर सकता है। साधारण पक्षियों को तो सभी मार सकते हैं। इसी प्रकार झूठे, निर्लज्ज, ज्ञानहीन, पशुतुल्य कुपुत्रों के लिए कठोर शब्दों में कहा गया है कि ऐसे पुत्रों को स्त्री पैदा ही क्यों करती है? ऐसे व्यक्तित्वलीन लोग व्यर्थ हैं –

कूड़ा निलज कपूत, हियाफूट ढांढा असल ।
इसज पूत अऊत, रांड जणै क्यूं, राजिया ॥

—गुण-अवगुण की पहचान न करनेवाले लोग जिस गाँव में रहते हैं तथा जहाँ कुछ भी सुना-समझा नहीं जाता, वहाँ रहना कठिन है –

गुण-अवगुण जिण गाँव, सुणै न कोई सांभलै ।
मच्छ-गलागल मांय, रहणो मुसकल, राजिया ।।

—गुण-ग्राहकता के बिना व्यापार नहीं चल सकता। जहाँ गुणों की पहचान नहीं हो, वहाँ रहना व्यर्थ है। स्वर, ताल, लय में गाया गया गायन पारखियों के अभाव में अरण्य-रोदन के तुल्य है। जहाँ 'खल-गुड़' एक भाव हों, उस नगरी से तो जंगल अच्छा है –

खल-गुड़ अणकुंतांह, एक भाव कर आदरै ।
ते नगरी हूतांह, रोही आच्छी, राजिया ।।

—कवि को गुणहीन समाज अच्छा नहीं लगाता है तथा जहाँ रत्न-पारखी न हों वहाँ रहना कठिन बताया गया है। कवि स्वयं गुणी और गुणियों का आदर करनेवाला था तथा ऐसे ही समाज का निर्माण वह करना चाहता था। गुणों से ही व्यक्तित्व का विकास होता है, समाज की उन्नति होती है तथा मानवता पोषण पाती है। कवि के सोरठों में ये भाव स्थान-स्थान पर द्रष्टव्य हैं।

(३) शूरवीर एवं कायर

कवि ने शूरवीरों का बड़े जोशीले शब्दों में चित्रण किया है। स्पष्ट रूप से कहा गया है कि तलवारों की धारा में प्रबलता से पराक्रम प्रकट करने वाले वीरों ने ही पृथ्वी को भोगा है, उसके भरतार (स्वामी) हुए हैं। दुर्गरक्षा, रणक्षेत्र में जूझना, युद्ध के नगाड़ों की आवाज पर तैयार होना, तलवार बजाना, शूरवीर तलवार और अपने सिर के बल पर मालिक का अन्न खाता है, अपना हक़ रखता है, रजवट के गुणों का बखान, शेर अपनी शक्ति के बल पर मृगपति बनता है, शक्तिशाली गज को भी पछाड़ देता है, वह कभी कायरों का-सा भोजन नहीं करता आदि ऐसे भाव-चित्र हैं, जो वीरत्व को प्रकट करते हैं। कतिपय लोकप्रिय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

गह-भरियो गजराज, मद छकियो चालै मतै ।
कूकरिया बेकाज, रुगड़ भुसै किम, राजिया ।।
कारण कटक न कीध, सखरा चाहीजै सुपह ।
लंक विकट गढ लीध, रीछ-बानरा, राजिया ।।

इसी प्रकार के सहज-सरल भाव-चित्र कायर के विषय में भी हैं। 'रँगा सियार' शब्द प्रयोग बड़ा सार्थक है। एक उदाहरण है—

घोचोलाग्यां घाव, घी-गीहूं भावै घणा ।
इसड़ा तो उमराव, रोट्यां मुहंगा, राजिया ।।

कवि के मन में कायरों के प्रति कोई आदर भाव नहीं था। इसी कारण बड़े दर्द भरे शब्दों में कायरों का चित्रण हुआ है।

(४) चतुर और मूर्ख

कवि के अधिकांश सोरठे चतुरता धारण करने के लिए प्रेरक निर्देश हैं। चातुर्य सफल जीवन के लिए प्रमुख तत्त्व है। चतुर सदा सजग रहता है तथा दूरगामी प्रभावों को देखकर कार्य करता है। कवि ने कहा है -

दाम न होय उदास, मतलब गुण गाहक मिनख।
ओखद रो कड़वास, रोगी गिणै न, राजिया॥

—चतुर व्यक्ति अवसर का लाभ उठाते हैं। अवसर चूकने पर दुःख ही दुःख हाथ लगता है। निम्न सोरठा बड़ा प्रसिद्ध है एवं इसे सीकर पर ऐतिहासिक संकट के समय कवि द्वारा कहा गया बताया जाता है –

समझणहार सुजाण, नर औसर चूकै नहीं।
औसर रो अवसाण, रहै घणा दिन, राजिया॥

चतुर *के साथ मूर्ख का चित्रण भी कवि ने किया है परन्तु मूर्ख का चित्रण* करके उसने अपने मन की पीड़ा को ही प्रकट किया है। उनके लिए हृदय-मूढ़, मोथा, (निपट मूर्ख) रांडोला (स्त्रैण पुरुष) जैसे हल्के शब्द कहे गये हैं। एक उदाहरण देखिए–

हिये मूढ जो होय, की संगत ज्यारी करै।
कालै ऊपर कोय, रंग न लागै, राजिया॥

(५) दाता और कृपण

दानी, समाज का रत्न होता है। दान मनुष्य का आभूषण है। दानियों के नाम सदा अमर रहते हैं। वीरमदे सोनगरा, जगदेव और अर्णोराज, करण के नामोल्लेख कर कवि ने उनकी दातारी की प्रशंसा की है तो इसके साथ ही राजा वीसलदेव के दातार न होने की बात भी कही है। प्रभुता से विनम्रता आने का सजीव चित्रण देखिए –

प्रभुता मेरु प्रमाण, आप रहै रजकण इसा।
जिकै पुरस धन जाण, रवि-मण्डल बिच, राजिया॥

दाता और कंजूस का अन्तर कवि के शब्दों में देखिए –

अड़वा-खड़बा आथ, सुदतारा विलसै सदा।
सूमा चलै न साथ, राई जितरो, राजिया॥

कृपण लाखों की सम्पत्ति पा लेता है तो भी व्यवहार में दातार नहीं हो सकता, देखिए –

अदतारां घर आय, जे क्रोड़ा सम्पत जुड़ै।
मौज देण मन मांय, रती न आवै, राजिया॥

हास्य की पुट देते हुए कृपण के लिए कहा गया एक सोरठा उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है–

लोह घड़ता लूहार, सुध-मन सू 'दे-दे' भणै।
सूमा रै उर सार, रहै घणां दिन, राजिया ॥

सुदातार और सूम का चित्रण कवि ने अति संक्षिप्त और प्रभावोत्पादक ढंग से किया है।

(६) सज्जन एवं दुर्जन

सज्जन और दुर्जन के चित्रण में कवि ने दुर्जन का अधिक बखान किया है। सोचा होगा, उसकी दुर्जनता को समाज के सामने रखकर दोनों को सचेत किया जा सकता है। फिर भी दुर्जन सदा दुर्जन ही रहे हैं। सज्जन के पास सज्जन आते हैं। वे सब स्थितियों में भला करते हैं –

कुटिल निपट नाकार, नीच कपट छोड़े नहीं।
उत्तम करै उपकार, रूठा-तूठा, राजिया ॥

परन्तु दुर्जन ऐसा नहीं करते। वे करते हैं –

उण ही ठाम अरोग, भांजण री मन में भणै।
आ तौ बात अजोग, राम न भावै, राजिया ॥

दुर्जन संकट के समय काम नहीं आ सकते –

सुख में प्रीत सवाय, दुख में मुख टालोदियै।
जों की कहसी जाय, राम-कचेड़ी, राजिया ॥

कवि ने उनके दोहरे व्यवहार को स्पष्ट करते हुए कहा है। यह सोरठा अत्यधिक लोकप्रिय है –

मुख ऊपर मिठियास, घट मांही खोटा घड़ै।
इसड़ा सू इखलास, राखीजै नहं, राजिया ॥

दुर्जनों से काम लेने का एकमात्र तरीका कवि ने स्पष्ट शब्दों में बताया है –

गैला गंडक गुलाम, पुचकार्‌यां बांथा पड़ै।
कूट्या देसी काम, रीस न कीजै, राजिया ॥

सज्जन और दुर्जन के साथ व्यवहार करने के कवि ने स्पष्ट निर्देश दिए हैं जो व्यवहार पर आधारित हैं तथा जीवन में खरे उतरते हैं।

(७) सच्चा और कपटी मित्र

सच्चे मित्र के लिए कवि ने अत्युत्तम उदाहरण दिया है –

साचो मित्र सचेत, कहो काम न करै किसो।
हरि अरजण रै हेत, रथ कर हाक्यो, राजिया ॥

लोक-व्यवहार में इस खरे व्यवहार को बहुत पसन्द किया गया है। कपटी मित्र का उदाहरण देखिए –

पल्-पल् में कर प्यार, पल्-पल् में पलटै परा।
ये मुतलब रा यार, रहै न छाना, राजिया।।

इस विषय पर कवि ने अनेक सोरठे कहे हैं, जो प्रच्छन्न एवं अप्रच्छन्न रूप से सच्चे और कपटी मित्रों के व्यवहार पर प्रकाश डालते हैं। कपटी मित्र कवि की पीड़ा का विषय रहा है।

(८) अन्य सूक्तियाँ

इसमें रुपये का महत्त्व, कामिनी की करामात, वीरभोग्या वसुन्धरा, कालधर्म के सम्मुख समानता, विधना के लेख आदि विषयों पर ऐसा तीखा कथन किया गया है, जो देखते ही बनता है। यहाँ बुढ़िया का एक चित्रण देखिए –

रोटी चरखो राम, अतरो मुतलब आपणो।
की डोकरिया काम, राज-कथा सूं, राजिया।।

यह बड़ा लोक प्रचलित सोरठा है। इसमें रोटी, चरखा और राम इन शब्दों के द्वारा बुढ़िया का सजीव चित्रण हुआ है। उसको राज-कथा से अब कोई मतलब नहीं है। बड़ी भाव एवं अर्थपूर्ण उक्ति है। ऐसी अनेक उक्तियाँ-सूक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं। कतिपय सोरठों में अन्तर कथा भी द्रष्टव्य है, जो विशेष प्रभावशील है।

(९) शासक-समाज

इसमें स्वामिधर्म, राजनीतिक चालें, हृदय का अंध शासक और अच्छे सरदार का होना, अविवेकी राजा का दरबार, अराजकता का वर्णन, राजा का रानियों के वश में होना आदि का चित्रण हुआ है। कवि ने राज-दरबार की बातें निकट से देखी थीं। अतः ये सोरठे बड़े सजीव बन पड़े हैं। कवि ने कहा है कि जो ठाकुर ओछे आदमियों को निकट रखता है और कुशल सरदारों का आदर नहीं करता—उसकी सही स्थिति का पता उसको युद्ध-स्थल में लगेगा–

नान्हा मिनख नजीक, उमरावा आदर नहीं।
ठाकर उण नै ठीक, रण में पड़सी, राजिया।।
आछा हुवै उमराव, हिया फूट ठाकर हुवै।
जड़िया लोह जड़ाव, रतन न फावै, राजिया।।
सुध हीणा सरदार, मत हीणा राखै मिनख।
अस आंधो असवार, राम रुखालो, राजिया।।

जहाँ बेखबर सरदार, बुद्धिहीन आदमियों से घिरा रहे, वे अंधे सवार की भाँति हैं। ऐसे राजाओं का राम ही रक्षक है। कवि ने निर्बल राजा, कमज़ोर

सरदार, ढीली शासन व्यवस्था, आदेशों की अवमानना, चापलूस दरबारी आदि का अच्छा चित्र सोरठों में खींचा है।

(१०) नीति-कथन

कवि के नीतिविषयक सोरठे भाव-मणियाँ हैं। ये समाज-संचालन के लिए नीतिनिर्देशक तत्त्व माने जा सकते हैं। इनमें प्रेरणा, सत्य कथन, यथार्थ चिन्तन और व्यावहारिक जीवन के लिए उपयोगी बातें हैं। इनमें समयानुकूल बात कहने, कार्य संचालन में क्रोध नहीं करने, रुपये की प्रधानता, हंस का नीरक्षीरविवेक, अग्नि, दुश्मन और रोग को पहले ही रोकने आदि अनेक ऐसे कथन हैं, जो नीति के साथ-साथ तत्कालीन समाज की स्थिति को भी स्पष्ट कर रहे हैं।

कवि कहता है कि वेद पुराण पढ़ना तो सरल है परन्तु व्यवहार बुद्धि से चलना कठिन है। लोक व्यवहार की योग्यता के लिए 'बात विज्ञान' का जानना परमावश्यक है। यह अपने आप में एक कठिन विषय है। कवि का मूल कथन द्रष्टव्य है।

पढणो वेद पुराण, सोहरो इण संसार में।
वांता तणो विनाण, रहस दुहेलो, राजिया ।।

वचन वाणों ने तो वड़े-से-बड़ा परिवर्तन कर दिया है। कवि ने अपना अनुभव निम्न सोरठे के माध्यम से इस प्रकार कहा है –

पाटा पीड़ उपाव, तन लाग्या तरवारिया।
भरै जीभ रा घाव, रती न औखद, राजिया ।।

यह सोरठा अत्यधिक लोकप्रिय है। इसका व्यावहारिक यथार्थ द्रष्टव्य है। रसना के गुण भी 'बात विज्ञान' में ही आते हैं। व्यवहार-जगत का एक और उदाहरण देखिये –

जण-जण रो मुख जोय, नहचै दुख कहणो नहीं।
काढ़ न दे वित कोय, रीरांया सू, राजिया।।

—रोने से कोई सहायता नहीं करता। अपने पुरुषार्थ के बल पर ही जीवन सफल हो सकता है।

स्वार्थ जगत का चित्रण करनेवाला यह सोरठा तो कहावत बन गया है। इसमें कथन की स्पष्टता देखिये –

मतलब री मनवार, चुपकै ल्यावै चूरमो।
विन मतलव री वार, राब न घालै, राजिया ।।

कस्तूरी और शक्कर का गुण तथा रूप भेद बताते हुए कवि ने गुण के मूल्यों की बात कितने सहज एवं सरल शब्दों में कही है। जो उनके सोरठों की एक मूल विशेषता है। देखिये –

काली घणी करूप, कस्तूरी काटां तुलै ।
सक्कर घणी सरूप, रोड़ा तुलवै, राजिया ।।

व्यवहार जगत के सत्य को प्रकट करते हुए कवि ने जो बात अपने सोरठों में कही है, उनमें से एक उदाहरण और प्रस्तुत है। इसमें प्रेम और कपट व्यवहार की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। हज़ार प्रयत्न करके भी इनको छिपाया नहीं जा सकता। कवि के शब्दों में देखिये—

हुन्नर करो हजार, स्याणप चतराई सहित ।
हेत कपट व्यवहार, रहै न छाना, राजिया ।।

समाज-नीति को अनेक उपभेद करके देखा जा सकता है। जिसमें संग-कुसंग, पर-दोष दर्शन, मुख्य हैं। सत संगति से जीवन उन्नत होता है तो बुरी संगति से अवनति देखने को मिलती है। संगति का उन्नत स्वरूप देखिये—

मलयागिर मंझार, हर कोई तरु चंदण हुवै ।
संगत लियै सुधार, रुंखां ने ही, राजिया ।।

कुसंगति से अवनति की स्थिति पर कवि ने अपनी पीड़ा को प्रकट करते हुए कहा है, जो द्रष्टव्य है –

स्याला संगत पाय, करक चंचेड़ै केहरी ।
हाय, कुसंगत हाय, रीस न आवै, राजिया ।।

पर दोष-दर्शन विषयक यह सोरठा तो कहावत बन चुका है –

डूंगर बलती लाय, जोवै सारो ही जगत ।
पण बलती निज पाय, रती न देखै, राजिया ।।

ये नीति-काव्य-मणियाँ कवि के सोरठों की शोभा को द्विगुणित करती हैं। प्रत्येक सोरठा अपनी काव्य-सौरभ से भरा-पूरा है। प्रत्येक की व्याख्या जीवन-व्यवहार की व्याख्या होगी।

(११) भक्तिपरक सोरठे

भक्ति राजस्थान की धर्म-प्राण जनता का जीवन अंग है। इसकी पुण्य धारा में कवि ने भी गोते लगाये हैं। राम भक्ति में कवि का मन रमा है। कवि ने अपनी साहित्य सरिता में समय-समय पर राम का स्मरण करके गोता लगाया है और भाव-रत्न प्राप्त किये हैं। कवि ने हरि स्मरण के लिए कहा है –

क्यूँ न भजै करतार, साँचै मन करणी सहित ।
सारो ही संसार, रचना झूठी, राजिया ।।

—मन, वचन और कर्म से शुद्ध रहकर राम भक्ति में लीन रहने पर जीवन सफल हो सकता हैं, छल-छिद्र से भगवान प्रसन्न नहीं होते। हरि कण-कण में रमा हुआ है तथा सूक्ष्मदर्शी है। इस विषय पर कवि के विचार देखिये –

सो मूरख संसार, कपट जिणा आगल् करै ।
हरि सहु जाणणहार, रोम-रोम री, राजिया ।।

कवि की मान्यता है कि संसार के सारे कर्म ईश्वरीय सत्ता के नियन्त्रण में हैं। वह जो चाहेगा, वही होगा। इसमें 'राई घटे न राजिया' कहकर कवि ने अपना दृढ़निश्चय धारण करके निःशंक रहकर चित्त को विचलित (चल्-विचल्) न करते हुए अपने कार्य पर तत्पर रहने के लिए कहा है—

नहचै होय निसंक, चित कीजै नह चल् विचल् ।
ऐ विधना रा अंक, राई घटै न, राजिया ।।

इसमें 'कर्मयोग' की ओर संकेत कर कर्मनिष्ठ रहने के लिए कहा गया है। विषतुल्य मनोविकार, मोह आदि में मग्न न रहने की बात कहकर कवि ने राम भजन के बिना जन्म व्यर्थ जाने की बात कही है, जो जीवन की सार्थकता का मूलमन्त्र माना गया है। राम भजन का व्यापक अर्थ जन कल्याण से है। कवि के शब्दों में देखिये—

विस-कसाय अनखाय, मोह पाय अल्साय मत ।
जलम अकारथ जाय, राम भजन विन, राजिया ।।

सीतापति भगवान राम सर्वज्ञाता हैं। वे विश्व-मन की बात जाननेवाले हैं। उनके जगत में रहकर किसी प्रकार का कपट व्यवहार मत करो। संसार क्षणिक और निस्सार है। सत्कर्मों में रमकर जीवन को सार्थक बनाने की बात कवि ने बार-बार कही है। कवि 'संसार-राम' के रहस्य को जानता था। राममय संसार की कर्मण्यता से भी वह भली प्रकार परिचित था। जीवन का उद्धार करने के लिए स्थान-स्थान पर ऐसा कहा गया है।

(१२) राजस्थानी रंगत

अधिकांश सोरठों में राजस्थानी वातावरण की रंगत द्रष्टव्य है। 'रोटी चरखो राम' में राजस्थानी लोक रंगत का सजीव चित्रण अपनी विशेषता रखता है। वीर-वर्णन, दातार-सूम, दुरजन-सज्जन, जन-जीवन की झाँकी और सामान्य व्यवहार आदि अनेक ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें राजस्थानी लोक रंगत उपस्थित है। ये सोरठे इस रंगत के कारण विशेष रोचक बन गये हैं। अरहट-कूप का वर्णन, टीटोड़िया री टोल्, पैदली रा पाँव, कोयल की वाणीं, कव्वै की कड़वाहट, जल ऊंडा थाथा थल्, नाई किसब निराट, बाज तपत करवास, रजपूती सूं राजिया, उर कड़वाई आक, रंच नै मूके राजिया, राब नै घालै राजिया, आदि ऐसे प्रयोग हैं, जो राजस्थानी लोक रंगत को प्रस्तुत करते हैं। इनसे सोरठों का सौष्ठव बढ़ा है। इनमें नीति और उपदेश की पुट भी देखी

जा सकती है। टीटूड़ी का उदाहरण प्रस्तुत है –

आवै नहीं इलोल् बोलणचालण री विबिध।
टीट्योड़ा री टोल्, राजहंस री, राजिया।।

बाज की उड़ान, उसके उड़ने की गूँज, उस गूँज से पक्षियों का भयभीत होना, एक सन्नाटा-सा छा जाना आदि वातावरण का कवि ने एक दृश्य-सा उपस्थित किया है जो रोचक है–

नभचर विहंग निरास, बिन हिम्मत लाखा बहे।
बाज तपत कर बास, रजपूती सूं, राजिया।।

यहाँ 'रजपूती सूँ' प्रयोग दर्शनीय है। यह बल-विक्रम का प्रतीक हो गया है। राजस्थानी वीर संस्कृति और साहित्य में इस शब्द की व्यापकता उल्लेखनीय है। इन सोरठों में व्यक्त लोक रंगत अपनी विशेष रोचकता रखती है।

(१३) विविध सोरठे

इसके अन्तर्गत अनेक विविध प्रसंगों पर कहे गये सोरठों को सम्मिलित किया जा सकता है। असार संसार एवं प्रकृति चित्रण विषयक सोरठे भी इसमें समाहित है। कवि ने स्वतंत्र रूप से प्रकृति चित्रण विषयक कोई सोरठा नहीं लिखा है बल्कि अन्य प्रसंगों के साथ प्रकृति के वातावरण को जोड़ा और सजाया गया है। एक सोरठा ध्वन्यात्मक चित्र तैयार करता सा प्रतीत होता है–

हिम्मत किम्मत होय, बिन हिम्मत किम्मत नहीं।
करै न आदर कोय, रद कागज रो, राजिया।।

आचरण को धर्म का आधार सिद्ध करने के लिए एक गहन-गम्भीर सोरठा कहा है। देखिये –

काम न आवे कोय, करम-धरम लिखिया किया।
धालो हींग घसोय, रुका विचालै, राजिया।।

इस विविधा में अनेक छोटे-छोटे मधुर एवं उपयोगी भावों पर सहज अभि-व्यक्ति प्रस्तुत की गई है। ऐसे अन्य उदाहरण और प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिनको जन मानस ने आज भी आत्मीय भाव से अंगीकार कर रखा हैं।

कवि के सोरठों में व्यापक अनुभव और सूक्ष्म दृष्टि के दर्शन होते हैं। ये सोरठे कवि की कीर्ति के पुंज हैं और जीवन के सहज सार हैं।

कवि के सोरठों के उक्त वर्गीकृत विवेचन पर एक दृष्टि डालने से सार संक्षेप में यही प्रकट होता है कि इन सोरठों में मुख्यत: तीन तत्त्व मुखर हैं— (१) वे नीति की उक्तियाँ जो हृदयसंवलित होकर सामने आई हैं और जिनमें भाव सत्ता के कारण पूरी सरसता है। (२) केवल नीति कथनवाली उक्तियाँ

जो प्रबोधन तक ही अपना प्रभाव क्षेत्र सीमित रखती है तथा (३) लोक प्रसिद्ध मुहावरों और कहावतों से युक्त उक्तियाँ जिनमें लोक रंगत का जुड़ाव प्रभावशाली रहा है।

विद्वत् समाज में प्रथम प्रकार की उक्तियाँ विशेषत: लोकप्रिय रही हैं। शेष दो प्रकार की उक्तियाँ सामान्य जन-मानस में विशेष चाव से पसन्द की गई हैं। जन मानस इन उक्तियों को अपनी साहित्यिक धरोहर मानता आ रहा है तथा अपने ज्ञान की धाक जमाने के लिए उनका प्रयोग समय-समय पर करता रहता है। इनके प्रयोग से सामान्य जन को विशेष आनन्दानुभूति होती है। इन उक्तियों से सामान्य जनता अपना 'साहित्य बोध' प्रकट करती रहती है।

'राजधर्म' के सार को प्रकट करनेवाला एक सोरठा देखिये, जिसमें 'आदि राज्य' की स्थापना का मूल उद्देश्य समाया हुआ है। निर्बल लोगों को शक्तिशाली लोगों से बचाने के लिए एक विशेष व्यवस्था की नितान्त आवश्यकता का अनुभव सदैव किया जाता रहा है –

सबला सम्पटपाट, करता नहं राखै कसर।
निबलां एक निराट, राज तणो बल, राजिया ।।

—यदि कोई शासन समाज में ऐसी व्यवस्था नहीं कर पाता है तो अराजकता की स्थिति बड़ी भयानक तथा विनाशकारी हो जाती है। राज्य का अस्तित्व ही व्यर्थ हो जाता है, देखिये –

करै न शंका कोय, गाँव धणी संभड़ गिणै।
रीत बराबर होय, रोलगट्टमें, राजिया ।।

—शक्तिशाली सदैव अपने आप अपनी 'ऊर्ध्व गति' को धारण कर लेता है। सिंह अपने आप 'मृगपति' बनता है, उसे कोई बनाता नहीं। इसमें बड़ा अर्थ-गांभीर्य छिपा हुआ है, देखिये –

मिले सिंघ बन मांह, कण मिरगां म्रिगपत कियो।
जोरावर अति जांह, रहे उरध-गत, राजिया ।।

ऐसी अनेक 'उक्तियाँ' प्रस्तुत की जा सकती है जिनमें 'भाव सत्ता' के कारण पूरी सरसता हैं तथा जो एक दिशा बोध देने के लिए सक्षम हैं। शूरवीर-मनस्वी, दातार-कायर, कृपण-शासक-समाज, चतुर-मूर्ख, सज्जन-दुर्जन आदि अनेक विषयों का गम्भीर एवं व्यावहारिक चित्रण कवि ने अपने सोरठों के माध्यम से प्रस्तुत किया है जो अपनी भाव-मधुरता के कारण पूरी सरसता रखते हैं।

नीति कथन में तो कवि बेजोड़ क्षमता रखता है। कथन का तीखापन सोरठों की सफलता का एक तत्त्व है। इनका निम्न सोरठा सामान्य जन के

व्यावहारिक जीवन में अत्यधिक लोकप्रिय है –

गैला गंडक गुलाम, पुच कारया बाथां पड़ै ।
कूट्यां देसी काम, रीस न कीजै, राजिया ।।

बातां तणो बिनाण: बे मौसम री बात, करणो जै सिध काज, मतलब री मनवार, आदि अनेक ऐसे प्रयोग हैं, जो कथन की तीव्रता को प्रकट करते हैं। एक लोकप्रिय नीति कथन और प्रस्तुत है –

ऊंचै गिरवर आग, जलती सह देखै जगत ।
पण जलतीं निज पाग, रती न सूझै, राजिया ।।

इसमें प्रबोधन है तो 'दुनियादारी' का 'व्यवहार-बोध' भी है। आत्म-निरीक्षण के लिए उद्‌बोधन है तो पर-दोष-दर्शन की मानवीय दुर्बलता की ओर संकेत भी है।

'कागजी ज्ञान' की खिल्ली उड़ाते हुए कवि ने 'आचरण ही धर्म का मूल आधार है' की पुष्टि बड़ी सरलता एवं सरसता से की है –

काम न आवै कोय, करम-धरम लिखिया किया ।
घालो हींग घसोय, रूकां बिचालै, राजिया ।।

—लिखकर रखने मात्र से ही 'कर्म-धर्म' काम नहीं आ सकते, सफल नहीं हो सकते। 'कागजी ज्ञान' तो वस्तुत: समय पर काम आनेवाला उपयोगी एवं व्यावहारिक ज्ञान नहीं है। सक्रिय ज्ञान ही फलीभूत होता है। जीवन में व्यावहारिक ज्ञान ही सफलता की कुंजी सिद्ध होता है।

कवि के सोरठों का तीसरा प्रमुख तत्त्व लोक प्रसिद्ध मुहावरों और कहावतों का सफल प्रयोग है। इस तत्त्व ने सोरठों को जन मानस से जोड़ने का कार्य किया है। उदाहरण स्वरूप कुछ प्रयोग देखिये—जात सुभाव न जाय, अस अन्धो असवार, पुटिया रो ज्यूं पाव, मोथा बुरी बलाय, उण ही ठाम अरोग भांजण री मन में भणै (जिस हांडी में खाना, उसी में छेद करना), बिन मतलब री वार राब न घालै, आदि इनसे सोरठों में एक सजीवता आयी है। कतिपय सोरठे तो कहावत के रूप में ही प्रयुक्त होते हैं—

(१) ओखद रौ कड़वास, रोगी गिणै न, राजिया ।
(२) काली घणी करूप, कसतूरी कांटां तुलै ।
सक्कर घणी सरूप, रोड़ा तुलवै, राजिया ।।
(३) उपजावै अनुराग, कोयल मन हरखित करै ।
कड़वो लागै काग, रसना रा गुण, राजिया ।।
(४) डूंगर बलती लाय, जोवै सारो ही जगत ।
(५) सिंघा तणी सिकार, रमणी मुसकल, राजिया ।

कवि के सोरठे नीति प्रधान होते हुए भी उनमें एक संवेदन शीलता है। कोरा उपदेश मात्र नहीं है। उनमें हृदय पर गहरी चोट करने की एक भाव-प्रवणता है। ये जादूभरी ऐसी उक्तियाँ हैं, जो अपना प्रभाव जमाये बिना नहीं रहती। ये मूलतः समाज की शाश्वत निधि हैं, तभी कविकाल से अद्यावधि अपना सजीव स्वरूप बनाये हुए है। ये पुस्तक में सजकर समादृत नहीं हुए हैं बल्कि जन-कंठ पर अपना आसन जमाकर जन जीवन में विचरण करते आ रहे हैं। ये समाज की संजीवनी शक्ति के एक पोषक तत्त्व के रूप में घुल-मिल गए हैं।

कवि ने अपने समाज की शासन-व्यवस्था के अनेक तथ्यों को अधिक उभारा है, जो आज के युग में भी अपना मूल्य एवं महत्त्व रखते हैं। सामन्त-वाद में साँस लेकर भी कवि ने उस युग में, व्याप्त बुराइयों और कमियों का उल्लेख अपने ढंग से किया है। उस समय के शासक, अधिकारी, रक्षक, शासन व्यवस्था का व्यावहारिक पक्ष आदि अनेक विषयों पर कवि ने लिखा है। इसलिए कवि का कथन अब भी नया-सा लगता हैं। यही बात समाज चित्रण पर लागू होती है। समाज व्यवस्था के सभी पहलुओं एवं पात्रों के क्रियाकलापों पर कवि ने खूब रोचक ढंग से लिखा है—कवि ने समाज के शाश्वत मूल्यों को अपने ज्ञान और व्यवहार की कसौटी पर कसकर उनको निरख-परखकर समाज के सामने रखा है। समाज उन सोरठों के माध्यम से अपनी बात कहता है, सुनता है, और आनन्द का अनुभव करता है। कवि के सोरठे समाज की निधि बने हुए हैं।

भाव साम्य

किसी भी समाज को सुगठित, मर्यादित एवं अनुशासित रखने के लिए 'समाज नीति' की अपनी विशिष्ट उपादेयता है। समग्र मानव-जगत की समाज नीति में मूलतः एक भाव साम्य होता है, जो देश-काल-पात्र के माध्यम से परिलक्षित होता रहता है। यही भाव-साम्य किसी भी देश और भाषा के नीति काव्य में पाया जाना एक सामान्य सी बात है, एक स्वाभाविकता है। नीति काव्य की 'विषय-वस्तु' समान भाव से अपने-अपने क्षेत्र (देश) एवं भाषागत स्वरूप में सदा ही शाश्वत स्रोत के रूप में प्रवहमान रहती है, जिसका मूल भाव कभी पुराना नहीं पड़ता, जिसकी उपादेयता और रोचकता कभी कम नहीं होती तथा जो किसी भी धर्म, वाद और सम्प्रदाय के घेरे से मुक्त रहती है। कवियों की रचनाओं में भाव-साम्य का होना एक साधारण-सी बात है। नीति साहित्य में इसका विशद रूप देखा जा सकता है। नीति-कवि कृपाराम खिड़िया तथा अन्य हिन्दी और राजस्थानी कवियों की रचनाओं में पाये जाने

वाले भाव-साम्य के कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

खल. गुड़ अणकूंतांह एक भाव कर आदरै ।
ते नगरी हूंताह, रोही आछी, राजिया ।। (कृपाराम)
भले बुरे जहं एक से, तहां न वसिये गांव ।
ज्यो अन्याय पुर में बिकै, खर-गुड एकै भाव ।। (वृन्द कवि)
जिण तिण रो मुख जोय, नहचै दुःख कहणो नहीं ।
काढ नै दै वित कोय, रीरायां सूं, राजिया ।। (कृपाराम)
रहिमन निज मन की विथा, मन ही राखहुं गोय ।
सुनि अठिलैहै लोग सब, बाँट न लैहै कोय ।। (रहीम)
मानै कर निज मीच, पर संपत देखे अपत ।
निपट दुःखी ह्वै नीच, रीसां बल.-बल. राजिया ।। (कृपाराम)
पर सुख संपति देखि पुनि, जरहि जे जड़ बिनु आगि ।
तुलसी तिन के भागतें, चलै भलाई भागि ।। (तुलसीदास)

राजस्थानी भाषा के अन्य नीति-कवियों और कृपाराम की रचनाओं में भाव-साम्य के उदाहरण देखे जा सकते हैं—

खल. गुड अण कूंताह, एक भाव कर आदरै ।
ते नगरी हूंताह, रोही आच्छी, राजिया ।।
कुन्नण पीतल. कूंत, एक भाव कर आदरै ।
है उण ठाकर हूंत, भाखर सखरा, भैरिया ।।
मतलब री मनवार, चुपकै ल्यावै चूरमो ।
बिन मतलब री बार, राब न घालै, राजिया ।।
धोबो मुठ्ठी धान, मांगै बानै ना मिलै ।
फट काढै पकवान, ना ना करतां, नाथिया ।।

कृपाराम के सोरठों में भावसाम्य के उदाहरण अत्यधिक संख्या में पाए जाते हैं। कई जगह तो शब्दावली ज्यों की त्यों मिल गई है। एक उदाहरण देखिये—

लावा तीतर लार, हर कोई हांका करै ।
सिंहा तणी सिकार, रमणी मुसकल, राजिया ।।
लावा तीतर लार, कर हांका भागै किता ।
सिंहा तणी सिकार, कोईक आणै, किसनिया ।।

कृपाराम संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। उन्होंने संस्कृत-सुभाषितों के सरल राजस्थानी रूपान्तर किये हैं। विषय की पुष्टि के लिए मात्र तीन उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

मिणधर विख अणमाव, मोटा नह धारै मगज ।
बीछू पूंछ बणाव, राखै सिर पर, राजिया ।। (१)

विषकुम्भसहस्त्रेण, गर्वनांप्नोति वासुकिः ।
वृश्चिको बिन्दुमात्रेण, वहत्यूर्ध्वं स्वकण्टकम् ।। (१)
मुख ऊपर मिठियास, घट मांही खोटा घड़ै ।
इसड़ां सूं इखलास, राखीजै नह, **राजिया** ।। (२)
परोक्षे कार्यहंन्तारं, प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्ताछशं मित्रम्, बिषकुम्भं पयोमुखम् ।। (२)
भ्याड़ जोख झख भेक, वारिज में भैलाबसै ।
इसकी भँवरो एक, रस की जाणै, **राजिया** ।। (३)
दलानाञ्च फलानाञ्च, संतु ते ते विवेकिनः ।
मकरन्द-विशेषज्ञो, विना भृङ्गंमिहास्ति कः ।। (३)

उक्त भाव साम्य से सुकवि कृपाराम की बहुज्ञता तथा लोकप्रियता प्रकट होती है। कवि ने संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी आदि सभी भाषाओं के नीति-भाव रत्न अपनी रंगत में सुसज्जित कर राजस्थानी साहित्य और समाज को दिये हैं, जो आज भी सभी के लिए मूल्यवान बने हुए हैं। उन्होंने संस्कृत के नीति-सूत्रों का राजस्थानी रूपान्तर करके उनको सर्वसाधारण के लिए सरस एवं बोधगम्य बना दिया, जो एक अत्यन्त उपयोगी, सार्थक एवं साहित्य सम्वर्द्धन का कार्य सिद्ध हुआ है। इससे उनके काव्य की रोचकता में अभिवृद्धि ही हुई है तथा एक विशेष रस का संचार हुआ है।

कहना न होगा कि कृपारामजी 'रससिद्ध' तो नहीं परन्तु 'लोक सिद्ध' कवि के गौरव से विभूषित होने की क्षमता अवश्य रखते हैं।

राजिये रा सोरठा और सम्बोधन शैली के काव्यों की परम्परा को राजस्थानी साहित्य की समृद्ध परम्परा के अंतर्गत देखा जा सकता है। अपने आराध्य, प्रिय सेवक, प्रियजन, आश्रयदाता, स्वयं या अन्य किसी को सम्बोधित करके लिखी गयी रचनाएँ सम्बोधन शैली के काव्य के रूप में जानी जाती है। इनमें भावातिरेक प्रमुख तत्त्व होता है, जिसमें सहायतार्थ पुकार, आत्मनिवेदन, आर्तावस्था जन्य कारुण्य, वियोग के दारुण दुःखों का प्रकटीकरण, वीर भावपरक उद्गार आदि अनेक भावव्यंजित होते हैं। इनके साथ ही नीतिगत उपदेश, प्रबोध, निर्देश आदि की प्रबल अभिव्यक्ति भी संबोधन शैली के काव्य के रूप में प्रकट हुई है। इनकी एक लम्बी-परम्परा भारतीय वाङ्मय में पायी जाती है।

जब से साहित्य-हृदय से काव्य-रचनाएँ प्रकट हुई तभी से संबोधन-शैली का प्रादुर्भाव माना जा सकता है। इसके प्राचीनतम उदाहरण ऋग्वेद की ऋचाओं में उपलब्ध हैं, जिनमें इन्द्र, अग्नि, जल, सोम आदि को बार-बार संबोधित किया गया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है –

पुराग्ने, दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे ।
प्रण आयुर्वसोतिर ।। (ऋग्वेद, ८/६/४४)

—हे अग्ने, तुम निवासप्रद हो। पापियों और हिंसकों से हमारी रक्षा करो और हमारी आयु की भी वृद्धि करो।

ऋग्वेद से ऐसे अनेक उदाहरण और प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिनमें ऋषियों, देवताओं, राजाओं आदि को संबोधित किया गया है। ऋग्वेद की अधिकांश ऋचाएँ इसी प्रकार सम्बोधनात्मक हैं। अन्य तीनों वेदों में भी 'संबोधन शैली' का प्रयोग हुआ है, जो एक तादात्म्य भाव को प्रकट करते हैं। अथर्ववेद से एक उदाहरण प्रस्तुत है–

ओऽम् योनो द्वेषत्पृथिवि
यः पृतन्याद्योभिऽदासानूमनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ।। (अथर्ववेद, १२/१/१४)

—हे मातृभूमि, हमसे जो द्वेष करे या हम पर सेना से आक्रमण करे, जो मन और शस्त्र से हमें दास बनाना चाहे, हे मनोरथों को पूर्ण करनेवाली माता, तू उसको नष्ट कर दे।

उपनिषदों में भी संबोधन शैली का प्रयोग प्रचुरता से हुआ हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् से एक उदाहरण प्रस्तुत है –

अमृतस्य देव धारणो भूयासम् । शरीरं में विचर्षणम् ।
जिह्वा में मधुमत्तमा । कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम् ।
ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः । श्रुतं में गोपाय ।। (तैत्तिरीयोपनिषद्, १/१/४)—हे देव, मैं अमृत तत्त्व का धारण करनेवाला बनूँ और मेरा शरीर स्वस्थ और सबल हो। मेरी जिह्वा अत्यन्त माधुर्य से युक्त हो। मैं श्रवणों द्वारा विशाल ज्ञान का संग्रह करूँ, आप ज्ञान के कोश हैं, जो बुद्धि से आच्छादित हैं। मेरे अध्ययन की आप रक्षा और पुष्टि करें।

संबोधन-शैली का यही क्रम पुराणों में द्रष्टव्य है। स्तुतिपरक रचनाओं में आराध्य को बार-बार संबोधित किया गया है। मार्कण्डेय पुराण में आयी 'दुर्गा सप्तशती' में देवी की स्तुति में बार-बार 'नारायणि नमोऽस्तुते (११/८, ९.१०) कहा गया है। तन्त्रोक्त 'देवी-सूक्त' में तो 'नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः,' की लगातार २३ श्लोकों में बार-बार आवृत्ति हुई है, जो भावों के प्रबल उद्वेग को प्रकट करती है। यह भावातिरेक का एक उत्तम उदाहरण है। श्रीमद्भागवत पुराण में शुकदेव मुनि और राजा परीक्षित के

संवादों में सर्वत्र संबोधन-शैली के दर्शन होते हैं। पुराणों में अभिव्यक्त 'ज्ञानचर्चा' में ऋषियों ने परस्पर संवादान्तर्गत प्रबोध-शैली का प्रयोग किया है, जिसमें संबोधनों द्वारा ही उस ज्ञान चर्चा को आगे बढ़ाया गया है।

आदि कवि वाल्मीकि ने भी अपनी रामायण में संवाद शैली में संबोधनों का प्रयोग उदार भाव से किया है। उन्होंने सर्वप्रथम भरद्वाज को ही रामायण की कथा सुनाई। इस संस्कृत महाकाव्य से संबोधन शैली के समर्थन में अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

महाभारत की पूरी कथा किसी-न-किसी को संबोधित करके सुनाई व कही गई है। इसलिए इस सम्पूर्ण वृहद् रचना को संबोधन शैली का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है। इसके आदि पर्व में उग्रश्रवा सौति ऋषियों को महाभारत की कथा सुना रहे हैं, जिसमें धृतराष्ट्र और संजय के संवाद में श्लोक संख्या १४८ से आगे लगातार २१४ श्लोक संख्या तक संजय को संबोधित किया गया है, जो इस शैली का अद्वितीय उदाहरण है। लगता है, यह अपने ढंग का प्रथम प्रयोग है जिसके दर्शन आगे चलकर राजस्थानी संबोधन काव्यों में हुए हैं। चीर हरण के समय द्रौपदी की करुण पुकार का वेग संबोधन शैली में प्रकट हुआ है।

वन पर्व में द्रौपदी ने श्रीकृष्ण की स्तुति में मधुसूदन, प्रभो, पुरुषोत्तम, भूतभावन, भूतेश्वर, नर श्रेष्ठ, महाबाहो, भगवानकृष्ण, जनार्दन आदि अनेक संबोधन किये हैं। श्रीमद्‌भगवदगीता में श्रीकृष्ण ने गीता का ज्ञान देते हुए अर्जुन को पार्थ, भारत, अनघ, पांडव, कुरुनन्दन, महाबाहु, कौंतेय, भरतवर्षभ, सखे, परंतप आदि अनेक नामों से संबोधित किया है। यह संवाद-संबोध शैली बौद्ध और जैन साहित्य में भी देखी जाती है। उत्तर अपभ्रंश काल के स्फुट छंदों में संबोधनात्मक शैली के दर्शन होते हैं। इसके लिए 'सिद्धहेम-शब्दानुशासन' ग्रंथ द्रष्टव्य हैं। जैन साहित्य में समय सुन्दर कृत जिनस्तवन, मंगल गीत और शृंगार गीतम् के नाम इस शैली के लिए विशेष उल्लेखनीय हैं।

उत्तर अपभ्रंश काल के साहित्य में प्रारम्भिक डिंगल साहित्य की संबोधनात्मक शैली देखी जा सकती है। इसके उदाहरण डिंगल गीतों एवं दोहों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। राजस्थानी लोक साहित्य भी संबोधन शैली की दृष्टि से समृद्ध है। इसका काव्यात्मक स्वरूप इस शैली से रोचक ही हुआ है।

लोक काव्य के रूप में अत्यधिक लोकप्रिय काव्य 'ढोलामारू रा दूहा'

(रचना काल अनुमानतः सं. १५३० वि. में) (डॉ. हीरालाल माहेश्वरी राजस्थानी भाषा और साहित्य) प्रेम काव्यों में अपनी प्रधानता रखता है। इसमें संबोधनों के माध्यम से भी विरह के बड़े मार्मिक, भावपूर्ण एंव सटीक चित्र उभरे हैं। अपनी लोकप्रियता के कारण 'ढोला और मरवण' का प्रेमी-समाज में सामान्यीकरण हो गया। यह सब इन तीखे-चुटीले संबोधनों की करामात है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं –

जइ तूं ढोला, नावियउ, काजलिया री तीज।
चमक मरेसी मारवी, देख खिवंतां बीज ।। (१५०)
ढोला, मिलिसि म वीसरिसि, नवि आविसि ना लेसि।
मारू-तणइ करंकऽइ, वाइस ऊडावेसि ।। (१५७)
ढोला, मोड़ो आवियउ, गइ वालापण वेस।
अब धण होई खोरड़ी, जाए कहा करेस ।। (४४३)

—हे ढोला, जो तू कजरी की तीज पर नहीं आया तो बिजली को चमकती हुई देखकर मारवणी चौंककर ही मर जायेगी (१५०), हे ढोला, न तो मिलते हो, न भूलते हो, न आते ही हो और न ले जाते हो। (फिर आकर) मारवणी के अस्थि पंजर पर कौवों को उड़ाओगे (१५७), हे ढोला, तू देरी से आया, उसकी बाल्यावस्था चली गई। अब वह प्रेयसी वृद्धा हो गई है। (तू) जाकर क्या करेगा ? (४४३)

'ढोला मारु रा दूहा' के पश्चात इस शैली के काव्यों में 'जेठवा-ऊजली के सोरठे' का नाम उल्लेखनीय है। ऊजली का विरह लोक कवि की वाणी से निकलकर नारी मात्र का विरह हो गया और राजस्थान भी इस कथानक से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। इसके फलस्वरूप गुजराती से भी अधिक सोरठे यहाँ कहे गये हैं। इनमें 'जेठवा' संबोधन बड़ा प्रभावशाली रहा है। लगभग सभी सोरठो में 'जेठवा' नाम का संबोधन हुआ है। कतिपय उदाहरण देखिए -

टोली सू टलतांह, हिरणां मन माठा हुवै।
वाल्हा बीछड़ताह, जीणो किण बिध, जेठवा ।।
जिण सूं लाग्योजोय, मन सोही प्यारो मना।
कारण और न कोय, जात पांत रो, जेठवा ।।

लाखणसी चारण (लगभग सं. १५३० वि.) ने 'ईलिया' के नाम संबोधन से सोरठे लिखे। एक उदाहरण प्रस्तुत है –

दावा लाध्यो दाह, सूमां ने सूझै नहीं।
पाया लाख पसाह, उपकारे तो, ईलिया ।।

भाद्रेस गाँव (जोधपुर) के आशानन्द बारहठ वि. सं. १५६३ के आसपास हुए हैं। कोटड़ा के बाघजी के पास वे अपने अन्तिम दिनों में रहे। इन्होंने 'बाघजी रा दूहा' नाम से रचना की। एक दूहा (सोरठा) द्रष्टव्य है—

बाघा आव बलेह, धर कोटड़ै तू धणी।
जासी फूल झड़ेह, बास न जासी, बाघजी ॥

दुरसाजी आढा (जन्म वि.सं. १५९२ या ९५) की 'बिड़द छिहतरी' के छिहतर सोरठे हैं, जो सभी महाराणा प्रताप को संबोधित करके लिखे गए हैं। यद्यपि कई विद्वान इनकी मौलिकता पर संदेह करते है[1]। जो हो, यहाँ एक दो उदाहरण संबोधन काव्य के क्रम में प्रस्तुत हैं –

अकबर पथर अनेक, के भूपत भेला किया।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ॥
अकबर समंद अथाह, तिह डूबा हिन्दू-तुरक।
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी ॥

बारहठ ईसरदास (जीवनकाल वि.सं. १५९५-१६७५) परम भक्त कवि थे[2]। उन्होंने देवी को संबोधित करके 'देवीयाण' काव्य ८५ पद्यों में लिखा है, जो स्तुतिपरक होने से भक्ति भावों से परिपूर्ण है। एक उदाहरण देखिए—

देवी रुकमणी रूप तू कान सोहे, देवी कान रै रूप तूं गोपि मोहे।
देवी सीत रै रूप तूं राम साथै, देवी राम रै रूप तूं भगत हाथे ॥ ६० ॥

पृथ्वीराज राठौड (जीवन-काल वि.स. १६०६-१६५७) विक्रम की सत्राहवीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ पिंगल कवि हैं। इन्होंने बसदेव रावउत रा दूहा, दसरथ देवउत रा दूहा ,भागीरथी रा दूहा, बल्लभदेवउत रा दूहा आदि संबोधन शैली में लिखे हैं। ये सभी रचनाएँ स्तुतिपरक एवं भक्ति भावना से पूर्ण हैं। इनमें से 'भागीरथी रा दूहा' के कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

---

१. (अ) दुरसा आढा : श्री रावत सारस्वत, पृ० ११ और ३१
(आ) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ. हीरालाल माहेश्वरी (पृ० १३९-१४७)

२. बारहठ ईसरदास: डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली

काया लागो काट, सीकलीगर सुधरै नहीं ।
निरमल् होइ निराट, तू भटे्या भागीरथी ।।
गंगाजल् गुटकोह, निरणै ही लीधौ नहीं ।
भव-भव में भटकोह, भूत हूवां भागीरथी ।।
मोड़ो आयो माय, तै बेगो ही तारियौ ।
पड़ियौ रहसू पाय, भाटो हुई भागीरथी ।।

इनमें भक्ति की पुण्य-धारा का प्रवाह द्रष्टव्य है । संबोधन के द्वारा इन दूहों (सोरठों) में एक तादात्म्य भाव व्यंजित हुआ है जो इनकी मार्मिकता को प्रकट करता है । परवर्ती कवियों के लिए ये रचनाएँ दिशा निर्देशक रही हैं । आगे के कवियों ने इन्हीं से प्रेरणा लेकर भक्ति, नीति और प्रबोधात्मक रचनाएँ की हैं, ऐसी उनकी प्रभावोत्पादकता से प्रकट होता है ।

नगजी खिड़िया (जीवन काल वि.सं. १८२० से १८६० तक लगभग) का भवा स्तोत्र एक भक्तिपरक रचना है, जिसमें बार-बार दुर्गा को संबोधित किया गया है । एक उदाहरण देखिये—

भवा कान्ह गोवरधन नक्ख धारे । भवा गोकल गोप गोपी उबारे ।
भवा भूपति होत अनकाल भंग । भवा सांपरे मेदनी बांधि संग ।।

यह रचना दुर्गा की भक्ति की तल्लीनता को व्यक्त कर रही है । बार-बार 'भवा' का शब्द-प्रयोग इसको प्रभावोत्पादक बना रहा है ।

रामनाथ कविया (जीवनकाल लगभग वि.सं. १८६५ से १९३५) की गणना प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध दोहाकारों में की जाती है । इनकी बनायी हुई 'करणी स्तुति', 'पाबूजी रा सोरठा' और 'करुणा-बावनी' रचनाएँ संबोधन काव्य के अन्तर्गत आती हैं । ये तीनों ही अपनी मार्मिकता के कारण साहित्य की धरोहर हैं । 'करुणा बावनी' में से कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

लेता तिरिया लाज, पति बोदो आड़ो पड़ै ।
ऐ नर बैठा आज, सिंध स्याल् हू्वै सांवरा ।।
मो मन पड़ियो मोच, आव कयां आयो नहीं ।
साड़ी रो नह सोच, सोच विरद रो सांवरा ।।

इनमें आधे से अधिक सोरठों में 'साँवरा' संबोधन के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जो इनके तीखेपन को प्रकट करनेवाला सिद्ध हुआ है । इनमें कवि की भाव प्रवणता दर्शनीय है ।

सांदू रायसिंह (जीवनकाल वि.सं. १८७०-१९०९) एक वीर और भक्त कवि

थे। इनके लिखे लगभग चार सौ सोरठे 'मोतिया रा दूहा' नाम से प्रसिद्ध हैं। उदाहरणार्थ एक सोरठा प्रस्तुत है–

जीमण पाँत जठेह, मिल भड़ आवै मोकला।
तणिया खाग तठेह, मांडै पग नह मोतिया॥

राठौड़ वलवन्तसिंह (रचनाकाल वि.सं. १८६६) की 'भैरव-बावनी' रचना संबोधन-शैली के अन्तर्गत आती है। इसमें भैरिया को संबोधित कर सोरठे लिखे गये हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

हाथी नै मण हेक, कीड़ी नै नित हेक कण।
विधना देत विसेस, भूख प्रमाणै, भैरिया॥

कविवर कृपाराम की संबोधनात्मक रचना-शैली की पूर्व परम्परा को प्रस्तुत करने के लिए अध्ययन करने पर यही प्रकट हुआ है कि विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी (कविवर का रचनाकाल) तक शताधिक कवियों ने इसी शैली में हजारों दोहे (सोरठे) लिखे हैं; जिनमें भक्ति, वीर, प्रेम, नीति, समाज चित्रण जैसे प्रमुख विषय अभिव्यक्त हुए हैं। विस्तार भय से उन सबका विस्तृत विवरण यहाँ नहीं दिया जा सकता, फिर भी, यहाँ संक्षेप में कतिपय उदाहरण मात्र विषय की रोचकता की दृष्टि से और प्रस्तुत किए जा रहे हैं —

आसी सावण मास, बरखा रूत आसी बलै।
साईनां रो साथु बलै न आसी, **बीभंरा**॥ (१)

खड़्ग धार पर काह, चालै तो चलबो सहल।
मुसकल जग रै मांह, नेह निभाणो, **नागजी**॥ (२)

काली काजल सारखी, घटा मंडाणी आज।
आजूणी निस एकला, जासी किम, **जसराज**॥ (३)

दूरां सूं कह देत, सोभा घर संपत तणी।
हिवड़ा हन्दो हेत, नैणां झलकै **नाथिया**॥ (४)

तुलै न परवत तोल, मोल नहीं मूरख तणो।
बड मिनखां रा बोल, नग नग भारी, **नोपला**॥ (५)

हाथां में हथियार, गाहड़मल बांधे घणा।
भारत पड़ियां भार, कोई क झेलै, **किसनिया**॥ (६)

भलां नरां घर भूख, चोरां रै घर चूरमो।
चतुरानन री चूक, चवड़ै दीसै, **चकरिया**॥ (७)

सिर झुकिया सह साह, सीहासण जिण सामने।
रलतो पंगत राह, फावै किम तोनै, **फता**॥ (८)

इनके अतिरिक्त राजस्थानी भाषा के संबोधन-शैली के काव्य-रूप में अन्य भी अनेक नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

इस सुदीर्घ परम्परा का अध्ययन करने पर यह कहा जा सकता है कि संबोधनात्मक शैली के काव्यों की रचनाएँ प्रत्येक काल तथा अवधि में सभी धाराओं में रमती-रुकती हुई अपनी परम्परा लिए हुए आगे बढ़ी है तथा इनमें प्रशस्ति, स्तुति, उपदेश, प्रबोधन, नीति, शृंगार में संयोग-वियोग का भावात्मक चित्रण, वीर गुणगान आदि अनेक साहित्य-कथ्यों के भाव-चित्र सहज ही अभिव्यंजित हुए हैं। यहाँ यह भी कहना उचित होगा कि 'ढोला मारु रा दूहा' (रचनाकाल वि.सं. १५३० के लगभग)[1] से शुरू कर कविवर कृपारामजी के जीवनकाल (वि.सं. १८०० से १८९० तक लगभग) तक यह संबोधन-शैली निरन्तर गतिशील रही है तथा आगे भी अपनी प्रगति पर है। इसमें एक विशेषता यह भी है कि अधिकांश रचनाएँ सोरठों (दूहों) में है तथा प्रत्येक सोरठे का अन्तिम शब्द संबोधन सूचक है जो एक अनोखी एवं रोचक परम्परा है। इससे रचना में प्रभावोत्पादकता ही आयी है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में विकासमान सुभाषितों की परम्परा से ही राजस्थानी में इस दोहा-सोरठा युक्त संबोधन-शैली का प्रादुर्भाव हुआ लगता है। सुभाषितों के अनुकरण पर रचित भक्तिकालीन साखियों-सबदों का यह विकसित-परिवर्तित रूप नीति-परक संबोधन-शैली के साहित्य में देखा जा सकता है। यह लगभग एक सहस्र वर्ष लम्बी परम्परा है, जिसमें राजस्थानी रंगत द्रष्टव्य है।

इस विवेचन से यह भी प्रकट होता है कि संबोधन-शैली में लिखे इस साहित्य को अग्रांकित दो वर्गों में सरलता से बाँटा जा सकता है — (१) भाव परक रचनाएँ (२) नीतिपरक रचनाएँ।

प्रथम वर्ग में अलौकिक भक्ति, शृंगार, वीर, करुण आदि रसों से रंजित रचनाएँ सम्मिलित की जायेंगी तथा द्वितीय वर्ग में उपदेश एवं नीतिपरक रचनाएँ आयेंगी। पहला वर्ग भावपरक है जबकि दूसरा ज्ञानपरक। भाव के साथ संबोधन का तादात्म्य मनोविज्ञान के आधार पर बैठता है तथा भावों की तीव्रता को प्रकट करने में सहायक सिद्ध होता है। इसी प्रकार नीतिपरक रचनाओं में भी संबोधन की अपनी एक सार्थकता है। उपदेशक या नीतिकार व्यक्ति के नाम से संबोधन के माध्यम से अपनी बात समाज, व्यक्ति या श्रोता को समझाना चाहता है, उसके गले उतारना चाहता है। जबतक श्रोता से उसकी निकटता नहीं होगी तबतक वह अपनी बात को कारगर ढंग से पूरे

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य ; डा. हीरालाल माहेश्वरी, पृ० २०२

विश्वास और जोश के साथ कह नहीं सकेगा और न ही उसकी कही हुई बात का कोई प्रभाव पड़ेगा। इसलिए प्रत्येक सोरठे में एक उसी व्यक्ति को बार-बार संबोधित करके अपनी बात को कहने का यह एक नीतिकार का साहित्यगत प्रयास है। व्यवहार जगत में भी यह देखा जाता है कि संबोधन जितना प्यारा और प्रभावशाली होगा, व्यक्ति पर उसका उतना ही मोहक असर होगा। यही संबोधन की सार्थकता है। ऐसे संबोधनों से ही ये नीतिपरक सोरठे जन-कंठ पर अपना आसन जमा सके। इनको स्मरण रखने में भी सरलता रही। इस कारण ये जनप्रिय हुए। भावप्रधान रचनाओं के अनुकरण पर नीतिपरक रचनाओं में संबोधन-शैली का प्रयोग हुआ लगता है। संबोधनों के कारण ये रचनाएँ चमत्कृत हुई हैं।

(ख) अन्यान्य रचनाएँ

'राजिये रा सोरठा'[1] के अतिरिक्त कवि की कतिपय अन्य रचनाएँ भी उपलब्ध हुई हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। ये सभी रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

(१) कवित्त चालराय का

चारणों में सर्वाधिक सम्पूजित महाशक्ति आवड़देवी का गुण गान है, जो चालकनेची, चालकनेच, चालकराय आदि नामों से भी चालकना गाँव की निवासिनी होने के कारण किया जाने लगा। यही महाशक्ति नागणेची; डूंगरेची, अनडेंची आदि नामों से भी प्रसिद्धि में आई, जो उनके प्रमुख स्थानों के द्योतक हैं।

संक्षेप में इनका पूर्व इतिहास यों है—आठवीं शती में सिंध में चालकना गाँव में चारण जाति की साउवा शाखा में मादा के पुत्र मामड़ (मम्मट) के घर महाशक्ति आवड़देवी का जन्म हुआ। इसे ही चारण जाति की आद्याशक्ति हिंगुलाज का अवतार माना जाता है। ये सात बहिनें थीं। शाक्त सम्प्रदाय के चार प्रधानशक्ति पीठों-पूर्व में कामाक्षा, पश्चिम में हिंगलाज, उत्तर में ज्वालामुखी, और दक्षिण में मीनाक्षी में। आद्याशक्ति हिंगलाज के नाम पर भी एक शक्तिपीठ है। चारणों में चौरासी महाशक्तियों की आराधना होती है। इन सभी देवियों के नाम अभी तक जानकारी में नहीं आये हैं। इनमें से ये नाम

---

१. 'राजिये रा सोरठा' सहित कवि की अन्य उपलब्ध रचनाएँ 'रचनाओं से चयन' (अध्याय ६) में दी गई हैं।

प्रमुखता से जाने जाते हैं—धर्मणदेवी, शिवदेवी, चौल, देवल, सैणी, लालबाई, फूलबाई, केसर, गुलाब, नागबाई, सुन्दरबाई, लाडबाई आदि। एक प्राचीन दोहा है—

आवड़ तूठी भाटियां, कामेही गौड़ाह।
श्री बरवड़ सीसोदिया, करनी राठौड़ाह॥

इससे यह प्रकट होता है कि आवड़ भाटियों की, कामेही गौड़ों की, बरवड़ सीसोदियों की और करनी राठौंडों की कुलदेवियाँ हुई हैं।

अपने आपको शक्ति की संतान माननेवाले चारणों ने आद्या महाशक्ति का अनेक नामों से गुणगान किया है। कलम और करवाल के धनी चारणों ने शक्ति से संबंधित विपुल साहित्य की संरचना की है। दुर्गा के गुणगान की प्राचीन परम्परा पुराणों में भी द्रष्टव्य है।

शक्ति पूजा भारतीय संस्कृति की एक सर्वमान्य विशेषता है। समाज और संस्कृति की रक्षार्थ शक्ति पूजा की परम आवश्यकता का अनुभव सदैव किया गया है। राजस्थान सदा से ही शक्ति का साधक रहा है। समाज का यही स्वरूप साहित्य में भी दर्शनीय है। शक्ति-साहित्य की एक सशक्त धारा के दर्शन राजस्थानी साहित्य में किये जा सकते हैं। इस धारा को प्रवहमान रखनेवालों में सुकवि कृपाराम का नाम भी विशेष उल्लेखनीय रहा है। कवित्त चाळरायका और चाळकनेच रो नाटक नामक इनकी रचनाएँ शक्ति-साहित्य की धरोहर हैं।

अपनी कुलदेवी की आराधना में खिड़िया कृपाराम ने 'कवित्त चाळराय का' शीर्षक से एक भक्तिपरक रचना की है। इसमें कुल १८ पद्य हैं, जिनमें एक गाथा और १७ कवित्त (छप्पय) हैं। अन्तिम पाँच कवित्त आरती शीर्षक से उपलब्ध हुए हैं। यह रचना भावों के वेग तथा काव्य कुशलता की दृष्टि से विशेष आकर्षक एवं गरिमामय है। इसमें भाषा की सजावट, मँजावट एवं गतिशीलता अपना अनोखापन लिये हुए है। रचना का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

मद मदरा रस मत्ति, आपांण रंगु अहरत्ति।
करत विलास ससत्ति, चाळराय मंड चाळकनै॥ १॥

देवी की आराधना में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, नाग, गंधर्व, सिद्ध, चारण, किन्नर, यक्ष, अप्सरा, नौ नाथ, भैरव आदि तैंतीस करोड़ देवी-देवता उपस्थित हैं। छत्तीस प्रकार के बाजे बज रहे हैं। आद्याशक्ति दुर्गा वस्त्राभूषणों से सुसज्जित षोडश शृंगार से मंडित होकर प्रसन्न मुद्रा में अनेक क्रीड़ाएँ करती

हुई अवतरित होती है। अपने आकर्षक मन मोहक एवं भक्तों को आनन्दानुभूति करानेवाले सौम्य स्वरूप में नृत्य करती हुई मद मस्त दुर्गा सबके मन मयूर को भाव-विभोर कर नचा रही है। इसमें संगीत एवं नृत्य का सजीव स्वर और स्वरूप द्रष्टव्य है।

इस रचना में भाव माधुर्य और शब्द-शिल्प वस्तुतः हृदयहारी हैं। भाव गुम्फन की दृष्टि से यह रचना कवि की एक उत्तम गंभीर रचना है।

बाग-बगीचों का वर्णन, वाद्य-यंत्रों का उल्लेख, भाव-नृत्य का चित्रण आदि ऐसे प्रसंग हैं जो कवि की बहुज्ञता एवं काव्य-चातुरी को प्रकट करते हैं। इस छोटी-सी रचना में प्रकृति-चित्रण का समावेश भी कुशलता से किया गया है, जो रचना की गरिमा को बढ़ाने में सहयोगी ही रहा है।

मदमस्त हो चाल्राय का खेलना, वनभ्रमण करना, रास-रमण, हड़हड़ हँसना, देवताओं का झूमना, जय-जय गान करना आदि अनेक आकर्षक प्रसंग इस रचना में आये हैं। 'आगम-निगम' में भी चाल्राय का चरित्र समा नहीं पाता है। विष्णुरूपा चाल्राय त्रिशूलधारी है। यह रुद्र रूपा है। उत्पत्ति और स्थिति, का कारण यही चाल्राय है। जगदम्बा एकमात्र जगत-जननी है।

इस रचना में कवि का मन स्वभावतः ही रमा है। अपनी इष्टदेवी व कुलदेवी की आराधना में कवि की तल्लीनता इस रचना का विशेष एवं सफल तत्त्व है। रचना का अन्तिम चरण इस प्रकार है—

'श्री चाल्राय ऊपर चमर, अमर करै श्री आरती।'

(२) चाल्कनेच रो नाटक

कवि की इस एक बहुचर्चित रचना के 'चाल्कनेसी', 'चाल्कनेच रो नाटक', 'चाल्कराय नाटक' आदि नाम भी ज्ञात होते हैं। परन्तु यह निश्चित कर पाना कठिन है कि यह एक रचना के ही तीन नाम हैं या कवि ने तीन नामों से अलग-अलग रचनाएँ की थी। इसका प्रामाणिक उल्लेख अभी नहीं मिल पाया है। श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ने इस रचना को 'चाल्क नसेनी' काव्य का ही एक अंश होने की संभावना व्यक्त की है परन्तु इसका 'चाल्कनेच रो नाटक' नाम ही अधिक उपयुक्त लगता है।

यहाँ 'नाटक' शब्द पर भी 'चाल्कनेच' के साथ विचार कर लेना ठीक रहेगा। यहाँ संवाद-शैली में गद्यात्मक कथावस्तु से युक्त नाटक से कोई तात्पर्य नहीं है। यह तो पद्यात्मक रचना है। यह आधुनिक शैली में लिखी 'पद्य नाटिका' भी नहीं है क्योंकि संवादों का प्रयोग इसमें देखने को ही नहीं मिलता। इसे नृत्य नाटिका अवश्य कहा जा सकता है।

इसे राजस्थानी शब्द प्रयोग 'नाटक-चेटक' के साथ रखकर देखना-परखना होगा, जिसका अर्थ होता है–चामत्कारिक कार्य, आश्चर्यजनक कार्य। लगता है, की देवी (दुर्गा) के चामत्कारिक कार्यों का वर्णन करने की दृष्टि से ही इसका नाम 'नाटक' रखा गया है। इस रचना में देवी के शृंगार, इत्र-फुलेल, वस्त्रा-भूषण, संगीत, नृत्य आदि का त्वरित एवं नाटकीय शैली में वर्णन किया गया है। देवी 'चाल्कनेच' एक क्षण में जवान, दूसरी क्षण में बूढ़ी, फिर बालक रूप धारण करके रम रही है। देवी अपनी पूरी सज-धज के साथ अखाड़े में खप्पर लेकर उतर रही है। डमरू बज रहे हैं, जोगनी नाच रही है, शेर की सवारी है, वह मद मस्त है, प्याले पी रही है, शेषनाग उसको नमन करता है, वह आदि-अनादि 'पुरातन पुरुष-प्रकृति स्वरूपा' है। इस अलौकिकता का त्वरित गति से वर्णन करने की शैली ने ही इसको 'नाटक' नाम दिया, ऐसा लगता है। इसलिए यह चाल्कनेच रो नाटक (अलौकिक कार्य) हैं।

इस रचना में कवि ने चाल्कमाताजी के शृंगार और नृत्य का वर्णन किया है। इसमें माताजी के आभूषणों की ध्वनि एवं नृत्य का बड़ा सजीव वातावरण प्रस्तुत करनेवाला वर्णन है। कवि ने अपनी कुलदेवी की आराधना में रसलीन होकर काव्य-रचना की है। संगीत एवं नृत्य का एक चित्र-सा उपस्थित कर दिया है। इसलिए यह एक संगीत युक्त नृत्य नाटिका के अधिक निकट लगती है। भक्ति रस की पुण्य धारा का प्रवहमान स्वरूप इसमें द्रष्टव्य है। भक्तिरस की रचना में इतनी तल्लीनता, रोचकता, और कुलदेवी की सर्वव्यापकता स्वाभाविक रूप में दर्शनीय है। शब्द-संयोजन, लय, भाव-प्रदर्शन तथा आकर्षक दृश्य-चित्रण आदि मिलकर इस रचना को बड़ी सजीव और प्राणवान बनाते हैं। कवि ने इसमें आनन्दानुभूति का वातावरण बनाकर अपने काव्य सौष्ठव को सफल बनाया है। ध्वनि, संगीत और नृत्य इस रचना की रोचकता के मूल तत्त्व हैं।

(३) षट्ऋतु वर्णन

संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी आदि सभी भारतीय भाषाओं के काव्य ग्रन्थों में प्रकृति-चित्रण को विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। महाकाव्यों के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों में प्रकृति चित्रण को समाहित किया गया है। प्रकृति चित्रण काव्य को कमनीय एवं रमणीय बनाते हैं।

साहित्य में प्रकृति-चित्रण का प्रयोग करने की एक प्रवहमान परम्परा रही है। इस परम्परा को राजस्थानी साहित्य में सहज ही देखा जा सकता है।

प्राचीन एवं अर्वाचीन राजस्थानी साहित्य के काव्य ग्रन्थों में प्रकृति-चित्रण एवं स्वतंत्र प्रकृति काव्य भरपूर मात्रा में उपलब्ध हैं।

इसी क्रम में कवि ने छः ऋतुओं का परम्परित चित्रण किया है। बसंत, ग्रीष्म, बरखा, शरद, हेम और शिशिर शीर्षकों से षट्ऋतुओं का चित्रण करते हुए कवि ने क्रमशः एक-एक कवित्त लिखा है।

इस रचना में छः ऋतुओं पर कुल छः पद्य ही अद्यावधि प्राप्त हुए हैं! इस प्राप्त रचना[1] के अन्त में 'सम्पूरण' शब्द लिखा हुआ है। हो सकता है कि कवि ने केवल छः कवित्त लिखकर एक परम्परा का पालन ही किया हो या इनसे अधिक कवित्त भी लिखे हों।

(ग) फुटकर रचनाएँ

कवि की ऐसी रचनाओं में गीत, कवित्त, छप्पय, आरती, दूहो आदि मिले हैं। हो सकता है, इनसे अधिक स्फुट रचनाएँ कवि ने की हों।

सुकवि कृपाराम ने डिंगल गीत परम्परा में गीतों की रचना भी की है। 'वीर प्रशस्ति' में उनके बनाए हुए तीन गीत मिले हैं तथा एक गीत पुष्कर तीर्थ के गुणगान से संबंधित है और एक गीत देवी स्तुति विषयक है।[2]

प्रथम गीत राठोड़ों की मेड़तिया शाखा के ठाकुर देवीसिंह दूदावत के पुत्र कुँवर सालिमसिंह की प्रशंसा में रचा हुआ है। दूसरा गीत सीकर के रावराजा देवीसिंह की प्रशंसा में रचा गया हैं। इसमें कवि को हाथी भेंट करने का वर्णन है। इसमें अनेक उपमानों के द्वारा गीतनायक की प्रशंसा की गयी है। तीसरे गीत में सीकर के रावराजा देवीसिंह की कासली इलाके की विजय का वर्णन है। इसमें भी कवि ने अपने नायक की जी भरकर प्रशंसा की है।

धार्मिक गीतों में तीर्थराज पुष्कर का वर्णन किया गया है। यह गीत कृपारामजी के स्नानार्थ पुष्कर आगमन पर लिखा गया था। कवि ने पुष्कर स्नान रावराजा लक्ष्मणसिंह सीकर के साथ किया था। गीत में मेले, यात्रियों, साधु-समाज, पुष्कर के जल-जन्तुओं, घाटों, भवनों, विद्वत् मंडली, सम्पूर्ण मेले की चहल-पहल, घाट स्नान का पुण्य फल आदि का रोचक वर्णन किया गया हैं। सम्पूर्ण गीत में पुण्य-धारा का प्रवाह गतिमान है। पुष्कर-वर्णन रमणीयता लिए हुए है।

---

१. यह रचना कवि के वंशज श्री चतरदान जी के पास सुरक्षित है।

२. वरदा १३/४ में प्रकाशित गीत। ये सभी गीत कवि के वंशजों के पास हैं।

एक गीत देवी स्तुति के रूप में लिखा गया है। इसमें शब्द संगठन सार्थक है। प्रत्येक दोहेले (पद्य) के अन्त में आव अम्ब आव, चस चस चस, भखि भखि भखि, देव देव देव, वीज वीज वीज,शब्द प्रयोग प्रभावोत्पादक है। कवि इसमें भाव-विभोर हो अपनी कुल देवी की आराधना कर रहा है। पूरा गीत भक्ति-भावना से युक्त है।

कृपारामजी ने 'वीर प्रशस्ति' में महाराजा विजयसिंह, गोरधन सिंह खींची सूरजमल सभासीघोत, जवानसिंह, देवीसिंह हरीसीघोत, नवलसिंह केसरीसीघोत के कवित्त भी प्राप्त हुए हैं। प्रत्येक में कवि ने कवित्त नायक का चित्रण परम्परित उपमानों के द्वारा किया है। इनमें प्रशंसा को ही अधिक स्थान मिला है, कला के दर्शन होते है तथा चारण कुल की परम्परागत कवित्त शक्ति का निर्वाह हुआ है। इतिहास की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है। इनसे कवि का समय निर्धारण करने के लिए एक दिशा सूचक तथ्य मिलते हैं। कवित्त नायकों से कवि का सम्पर्क होने का अटूट प्रमाण इन कवित्तों के द्वारा मिलता है। इनसे कवि की राज-दरबारों में प्रसिद्धि और काव्य सम्मान का पता चलता है। इनसे यह भी पता चलता है कि जोधपुर नरेश महाराजा विजयसिंह गंगाणी के स्वामी गोरधन सिंह खींची और देवीसिंह मेड़तिया प्रभृति तत्कालीन राज्य मान्य पुरुषों से भी कवि का अच्छा संबंध था। इन कवित्तों में पिंगल परम्परा के दर्शन होते हैं। उपमानों की झड़ी इनमें द्रष्टव्य है।

दो छप्पयों की एक आरती में दुर्गा के बल-विक्रम, सेवक-सहायता, शेर की सवारी, अकाल में भूख से रक्षा आदि का वर्णन हुआ है। फुटकर छप्पय में भी चालकनेच री चोकी (रखवाली-पहरेदारी) का वर्णन हुआ है। ये सभी रचनाएँ समर्पण स्वरूप हैं।

इनके अतिरिक्त कवि की निम्नलिखित रचनाएँ भी बतायी जाती हैं, किन्तु वे प्राप्त नहीं हो सकी हैं[1]–

(१) अलंकार ग्रंथ (२) लक्ष्मण प्रकाश ग्रंथ तथा (३) पिंगल प्रबंध

ऐसा प्रतीत होता है कि ये एक ही ग्रंथ के भिन्न-भिन्न नाम हैं। इस सम्बन्ध में और खोज की आवश्यकता है।

---

१. (अ) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १९५
(ब) शोध पत्रिका अंक १४/१ पृ० ११ श्री सौभाग्यसिंह शेखावत का लेख,
(स) श्री नटवरजी जोशी (लक्ष्मणगढ़) से प्राप्त सूचना के आधार पर

श्री नटवरजी जोशी[1] (प्रधानाचार्य, ऋषिकुल संस्कृत विद्यापीठ, लक्ष्मण-गढ-सीकर) के अनुसार, 'पिंगल प्रबंध' का प्रारम्भिक अंश निम्नलिखित है-

एक रदन प्रथू अंग बदन मांतैंग वन तवैंर ।
खल प्रचंड कृत पड़ कमण्ड दम दम कर ।।

ललित भाल शशि बाल लाल सिन्दूर अलंकृत ।
मदा मोद रस लुब्ध माल की लाल पंड कृत ।।

मंगल सरूप मंगल करन सर्वं मंगला शक्ति सुव ।
वंदत गणेश अरिविन्द पद हेम वृन्द आनन्द हुव ।।

दोहा—करिवर बदन प्रणाम करि धारि जग जननि ध्यान ।
कहन समर्थ मति मंद कवि गहन छंद पथ ग्यान ।।

उक्त सभी रचनाओं से कवि की बहुज्ञता का पता चलता है। नीतिकार के रूप में सुप्रसिद्ध कवि कृपाराम ने डिंगल परम्परा का निर्वाह करते हुए अनेक रचना शैलियों में साहित्य सृजन किया है ।

---

१. आपने ऋषिकुल संस्कृत विद्यापीठ में कृपाराम खिड़िया आसन की स्थापना कर रखी है । इसके अन्तर्गत इन्होंने कवि के गाँव की अनेक बार यात्राएँ की हैं जिनका उद्देश्य कवि की रचनाओं का पता लगाना रहा है ।

4

रचनाओं की भाषा और शैली

खिड़िया कृपाराम की भाषा राजस्थानी है। उन्होंने डिंगल और पिंगल दोनों शैलियों में रचनाएँ की हैं। 'देवी स्तुति' एवं 'वीर प्रशास्ति' में लिखी गई उनकी रचनाएँ-कवि चालराय का, चालकनेच रो नाटक, वीर गीत आदि डिंगल में हैं तो षट्ऋतु वर्णन तथा तत्कालीन शासकों की प्रशंसा में लिखे गये कवित्त आदि पिंगल में है। उनकी सर्वाधिक लोक-प्रसिद्ध रचना 'राजिये रा सोरठा' राजस्थानी की एक सशक्त रचना है, जिसमें डिंगल एवं बोलचाल की सरल राजस्थानी के शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है तथा इसमें मुहावरों एंव कहावतों के माध्यम से लोक-रंगत के सहज ही दर्शन होते हैं।

ब्रजभाषा मिश्रित राजस्थानी को यहाँ पिंगल कहा गया है। इसमें राजस्थानी की सभी विशेषताओं के साथ विषय एवं भावों के अनुरूप कोमल कान्त पदावली का प्रयोग हुआ है, जो उसकी एक प्रमुख विशेषता कही जा सकती है। इसे वीर काव्यों के लिए कम उपयुक्त माना गया है। इसमें मुख्यत: शृंगार, शान्त, करुण आदि कोमल रसों की रचनाएँ अधिक हुई हैं।

अर्वाचीन राजस्थानी को विद्वानों ने अर्वाचीन डिंगल नाम भी दिया है। डिंगल की उत्तर परम्परा में मिली सभी विशेषताएँ इसमें पायी जाती हैं जो आज के राजस्थानी साहित्य को उससे जोड़ती हैं।

उक्त तीनों रूपों की भाषा का गम्भीर और सरल प्रयोग कृपारामजी की रचनाओं में सफलता से हुआ है। इस संबंध में कतिपय उदाहरण देखिए—

१. गम्भीर विषय का उदाहरण—

सबला सम्पट-पाट, करता न राखै कसर।
निबला एक निराट, राज तणो बल, राजिया।। १

२. सरल विषय का उदाहरण—

मतलब री मनवार, चुपकै ल्यावै चूरमो।
बिन मतलब री वार, राब न घालै, राजिया।। २

बलवान उथल-पुथल करने में, दूसरों का अधिकार छीनने में कोई कसर नहीं रखते परन्तु निर्बलों को तो केवल राजा का ही बल होता है (१) स्वार्थ के कारण मनुहार करते हैं तो चुपके से चूरमा लाकर खिलाते हैं पर जब स्वार्थ नहीं होता है तो कोई राबड़ी (सामान्य पेय व खाद्य पदार्थ) भी नहीं देता। (२)

प्रथम में राजनीति के मूल सिद्धांत को गम्भीर शब्दों के द्वारा स्पष्ट किया गया है तो दूसरे में व्यावहारिक नीति को सरल शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है। दोनों में विषयगत भाषा का प्रयोग दर्शनीय है।

कवि ने संस्कृत, राजस्थानी, ब्रज, अरबी, फ़ारसी आदि सभी तत्कालीन प्रचलित भाषाओं के शब्दों का प्रयोग बड़ी कुशलता एवं प्रभावी ढंग से किया है। उन शब्दों के स्वरूप को बनाए रखते हुए भी लोक-रुचि के शब्दों के साथ उनको और अधिक सजाया-सँवारा गया है। कवि का शब्द-संयोजन कहीं भी अखरनेवाला नहीं है। सोरठों में तो ग़ज़ब का शब्द-लालित्य है। कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत है :

तत्सम संस्कृत

गजराज, खर, तृण, कोप, विकट, कटक, प्रभुता, रजकण, रवि-मण्डल, सुरतरु, रंक, वचन, अविवेक, भूमि, उपकार, अधम, अपमान, उद्यम, प्रमाण श्वान, वारिज, विविध, केहरी, प्रचंड, सुलोचन, उर आदि।

तद्भव संस्कृत

आथ (अर्थ), सुभाव (स्वभाव), जामा (याम), सियाल् (श्रृगाल), खेत (क्षेत्र), सम्पत (सम्पत्ति), म्रिगपत (मृगपति), उरधगत (उर्ध्वगति), निहचै (निश्चय), हेक (एक), सुकव्या (सुकवियों), उकत (उक्ति), आक (अर्क), वित (वित्त), वसत (वस्तु), टीटोड़िया (टिट्टिभ), सामधर्म (स्वामि धर्म), मिनख (मनुष्य), नरपत (नृपति), पंछी (पक्षी), गिरवर (गिरिवर), विभै (वैभव), सांवत (सामंत), निलजी (निर्लज्ज), क्रितघण (कृतघ्न), मिणधर (मणिधर), विख (विष), ओखद (ओषधि), भंवरो (भ्रमर), आक्रत (आकृति) आदि। कवि की रचनाओं में इनका बाहुल्य है।

चारण शैली के प्राचीन राजस्थानी शब्द

आगल्, चल्-विचल्, मोताहल्, जल्हर, कीधोड़ा, विहूणा, दीठो, रयणायर भाण, विडाबणा, इल्, हल्, भगाटां आदि।

ब्रज भाषा के शब्द

कहूकात, फूलनि, कनारै, सिलानः लौ, वारिजहू, तापन, चन्दनन, भोरते, देखबेकू, कलिकान, कान्हाज्हूके, कीधौ आदि ।

विदेशी भाषा (अरबी, फ़ारसी आदि) के शब्द

साबूत, उमराव, नजीक, बेखून, लानत, मुफ्त, मगेज, बेमोसर, इसकी कागद, रायजादो, जलूस, सफील आदि ।

युगीन परिस्थितियाँ सदैव साहित्य से झाँकती हैं तथा वे साहित्य को प्रभावित भी करती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी की काव्य-भाषा धीरे-धीरे क्लिष्टता के भार से मुक्त हो रही थी तथा कुशल कवियों में लोक तत्त्वों का समावेश करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी। नीतिकारों पर मुख्यतः इस प्रवृत्ति का प्रभाव देखा जाता है। कृपाराम की भाषा भी इन तत्त्वों से सज्जित है तथा प्रसाद गुणयुक्त है। इसलिए उनका भाषा-सौष्ठव एवं सारल्य एक आदर्श हो गया जिससे परवर्ती कवि प्रभावित हुए लगते हैं।

कवि ने सोरठों में लौकिक अभिव्यक्ति को विशेष महत्त्व देते हुए लोक-प्रवादों, मुहावरों, कहावतों आदि का अपने ढंग से सार्थक एवं सजीव प्रयोग किया है जिसके फलस्वरूप वे समाज की वस्तु हो गये। लोक हृदय की पहचान करना सिद्धहस्त कवि के ही वश की बात होती है। कवि को यह गौरव प्राप्त हुआ है। भाषागत प्रयोगों के कारण ही उनके सोरठे 'लोक-मुक्ता' हो गये हैं तथा इनसे उनकी भाषा सक्षम एवं सजीव हुई हैं। प्राणवन्त भाषा के सभी गुण कवि की भाषा में पाये जाते हैं। कतिपय मुहावरों-कहावतों के उदाहरण देखिये :-

राई घटै न, राजिया (रत्ती भर भी कम नहीं होता)
विधना रा आंक (विधाता के लेख)
रंग छै ज्यानै, राजिया (उनको धन्यवाद है)
धार खगां सनमुख धसै (तलवारों की धार में भी सम्मुख घुस पड़ते हैं)
भोगै सोई भरतार (धरती को भोगनेवाला ही उसका पति है)
जात सभाव न जाय (जाति स्वभाव नहीं जाता)
रीठ वजावै, राजिया (तलवार बजाना)
सिरसाटै रो सूरमा (शीश कटानेवाला शूरवीर)
बीज तणो ससिबाल (दूज का चन्द्रमा)
रंग्या-स्यालां, (रँगे सियार)

रजपूती में रेत (वीरत्व में धूल डालना)
दामा लोभी, रंजै न बातां, राजिया (अर्थलोलुप बातों से राजी नहीं होते)
हिया फूट ठाकर (हृदय के अंधे ठाकुर)
जाणै रूणो जाय रिद रोही में, राजिया (अरण्य-रोदन)
कालै ऊपर कोय, रंग न लागै, राजिया (काले पर दूसरा रंग न चढ़ना)
पुटिया री ज्यूं पाव (पेदली का पाँव करना)
ज्यूं पूरबियो जाय, रत्ती दिखाया, राजिया (रंगे को चिरमी दिखाना)
रांधै छाती, राजिया (छाती छीलना)
उण ही ठाग अरोग, भांजण री मन में भरणै (जिस हांडी में खाना, उसी में छेद करना)
करै बिभै रा कोट (हवाई महल बनाना)
रेखा पाहण, राजिया (पत्थर की लकीर)

शब्द-संयोजन में कवि का प्रयोग अनुकरणीय है। शब्द-शिल्प के चमत्कार ने कवि को 'शब्द सिद्ध' बना दिया है। संभवतः कवि की यह सबसे बड़ी विशेषता है, जिससे सोरठे गौरवान्वित हुए हैं। शब्द संयोजन के मुख्य एवं सुन्दर प्रयोग :

रसना रा गुण, रंग छै, रड़कै चित में, सिघा तणी सिकार, जड़िया लोह जडाव, रतन न फावै, ओखद रो कड़वास, उपजावै अनुराग, कड़वो लागै काग, समर सियाल सुभाव, सुधहीणा सरदार, ठाला ठाकर ठोठ, बिभैरा, कोट, राम तणो डर, बांतां तणो बिनाण, पाटा पीड़ उपाव, सरम रो भार, जगत करै जिमणार, काली धणी करूप, औसर रो अवसाण आदि।

इनके अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जिनके प्रयोग से लाक्षणिकता झलकती है तथा वे अपने में गंभीर अर्थ छिपाये हुए हैं जिनकी रसानुभूति की जा सकती है, उनको अभिव्यक्त करना कठिन है। ऐसे शब्दों को देखिये—

गत राड़ो (नामर्द, हिजड़ा, लज्जा एवं व्यक्तित्व हीन, व्यर्थ में इधर-उधर गलियों में भटकनेवाला संबोधन)
पदमणी (कुल लक्ष्मी)
राघड़ (राजपूतों के लिए सम्मान हीन संबोधन)
रजपूत्ति (वीरत्व, आन-मान पर मर से मिटनेवाली भावना)
रांडोला (स्त्री का गुलाम, स्त्री जैसे लक्षणवाला)
रुलिया (उद्देश्यहीन, इधर-उधर गलियों में घूमनेवाला)
ठाकर (राजपूती गौरव का धणी)

पंछी (पक्षी, दयनीय, भाव का संबोधन)

रोल़गट्ट (अराजकता, नियमरहित शासन व्यवस्था)

मच्छगलागल़ (मत्स्य न्याय, बड़ी मछली के द्वारा छोटी मछली को झटपट-गला-गल़ खाना-निगलना)

ऊत (अऊत, अपुत्र, पुत्र के योग्य गुणों से हीन व्यक्तित्व, मर्यादाहीन व्यक्तित्व, निपूता, मूर्ख, उजड्ड आदि)

कतिपय सामासिक शब्दों के उदाहरण–

कीरती-सार, राम-कचेड़ी, हिया-फूट, मूँडी-भली, राव-रंक, राज-कथा, रीछ-बानरां, जात-सुभाव, रीझ-खीझ, रूठा-तूठा, आदि। इनसे भाषा प्राणवन्त हुई है।

भावानुरूप प्रयोग भी कवि की भाषा में पाए जाते हैं। देखिए–

'कड़वो लागै काग' में कड़वाहट का-सा आभास होता है तो 'मुख ऊपर मिठियास' में मधुरता की-सी अनुभूति होती है। ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनमें भावानुरूप भाषा का आनन्द लिया जा सकता है। कतिपय उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं –

१. रंग छै ज्यां नै (धन्यवाद)
२. रजपूती सूं (क्षत्रियत्व)
३. बांकापणो विसाल (वीरत्व)
४. रोट्यां मुंहगा (दीनता, कायरता)
५. सुध मन सूं दे दे भणै (हास्य)
६. रोल़गट्ट में (अराजकता)
७. रांड जणै क्यूं (क्रोध)
८. रजि उडावो (धिक्कारना)
९. रोटी चरखो राम (एकरस जीवन)

भाव और भाषा का यह समन्वित जुड़ाव प्रभावोत्पादक है, चाहे वह डिंगल हो, चाहे पिंगल या सरल राजस्थानी हो। ऐसा सुखद समन्वय बहुश्रुत कवियों में ही पाया जाता है। कवि कृपाराम ने भावानुरूप भाषा का प्रयोग करने में दक्षता प्राप्त की है। उनकी भाषा में लोक-तत्वों के समावेश ने भावों को कारगर वाणी दी हैं।

वयण सगाई अलंकार–

राजस्थानी चारण काव्य का यह एक विशिष्ट अलंकार है। डिंगल कवियों के लिए इसका प्रयोग अनिवार्य-सा हो गया था तथा इससे उनकी सिद्धहस्तता प्रकट होने लगी थी। यह अनुप्रास की कोटि का अलंकार हैं। इसमें श्रुति-

माधुर्य अपनी विशेष छटा रखता हैं। इसी कारण राजस्थानी डिंगल साहित्य में यह सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है। इसमें प्रत्येक चरण के प्रथम शब्द का प्रथम वर्ण उस चरण के अन्तिम शब्द के प्रथम वर्ण से मिलता है। (रघुवर जस प्रकास) से उदाहरणार्थ एक सोरठा प्रस्तुत है–

काम न आवै कोय, करम धरम लिखिया किया।
घालो हींगं घसोय, रूकां विचालै, राजिया॥

यहाँ काम और कोय, करम और किया, घालो और घसोय तथा रूंका और राजिया शब्दों में क, क, घ और र वर्ण साम्य से वयण (वैण-वचन) सगाई अंलकार है।

राजस्थानी रीति शास्त्र में ऐसा नियम है कि यदि वयण सगाई का निर्वाह कुशलता के साथ होता है तो दग्धाक्षरों और अशुभ वर्णों आदि का दोष नहीं लगता, देखिए–

आवै इण भाषा अमल, वैण सगाई वैस।
दग्ध अगण वद दुगणरों, लागै नहं लवलैस॥ दोहा १/१६
(रघुनाथरूपक, गीतां रो, पृ० १२)

इस अलंकार के महत्व को प्रतिपादित करते हुए यह भी कहा गया है कि वंश परम्परा का बैर (हाड बैर) जिस प्रकार विवाह संबंध से सदा के लिए मिट जाता है, उसी प्रकार वयण सगाई से भी किसी प्रकार के दग्धाक्षर आदि के दोष दूर हो जाते हैं।

खून कियां जाणै खलक, हाडवैर जो होय।
बणै सगाई वैण तो, कलपत रहै न कोय॥
(रघुनाथरूपक, गीतां रो, पृ० ८३, दोहा ६२०)

वयण (वचन) सगाई (संबंध) के 'वर्ण-मेल' का तात्विक विवेचन करके उनके विस्तार के आधार पर विद्वानों के द्वारा इसके शताधिक भेद भी किये गए हैं।[1] परन्तु यहाँ मुख्य-मुख्य भेदों को ही कविवर कृपाराम के काव्य में देखने की चेष्टा की जाएगी। कृपाराम का ऐसा एक भी सोरठा नहीं होगा, जिसमें किसी न किसी भेद के साथ वयण सगाई का प्रयोग न हुआ हो। उनकी अन्य रचनाओं में भी 'वयण सगाई' का प्रयोग हुआ है परन्तु सोरठों में तो इसकी छटा मनमोहक हो गई है। सोरठे के अन्तिम चरण में तो इसका प्रयोग (र और र) अनिवार्यतः हुआ ही है। फलतः कई सोरठों में तो समान-सी

विशेष अध्ययन के लिए द्रष्टव्य;
१. रघुनाथरूपक गीतां रो २. रघुवर जसन प्रकास और ३. पिंगल सिरोमणि आदि ग्रंथ

शब्दावली देखी जा सकती है परन्तु 'श्रवण-सुख' के कारण वह अखरती नहीं है।

चरण के प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृत्ति चरण के अन्तिम शब्द के आदि, मध्य और अन्त में होने पर आदि मेल, मध्य मेल और अन्त मेल का वयण सगाई अलंकार होता है। यहाँ कृपाराम के सोरठों से इनके उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

१. **आदि मेल :** (यह उत्तम कोटि की वयण सगाई कहलाती है।)

क. धान नहीं ज्यां धूलं, जीमण वखत जिमाड़ियै।
मांय अंश नहिं मूल, रजपूती रो, राजिया॥

ख. रोटी चरखो राम, इतरो मतलब आपणो।
के डोकरिया काम, राज-कथा सूं, राजिया॥

ग. सुध हीणा सिरदार, मत हीणा राखै मिनख।
अस आंधो, असवार, राम रुखालो राजिया॥

2. **मध्य मेल :**

क. हरि सहु जाणणहार।

ख. हाथल बल मोताहला।

ग. कांच क्रिपण बेकाज।

घ. वरतै हेत सवाय।

ङ. खोटी करै निखेद।

3. **अन्त मेल :**

कवि के सोरठों में इसके उदाहरण अत्यल्प हैं। कवि का ध्यान मुख्यतः उत्तम कोटि की वयण सगाई की ओर रहा है।

क. सुकव्यां आनै तीस।

ख. राखै नहीं लगार।

ग. तज सारी मन घात।

४. समान स्वरों की वयण सगाई भी उत्तम कोटि की गिनी जाती है। इसके उदाहरण भी सोरठों में द्रष्टव्य है–

क. आहव नै आचार।

ख. आछा जुध अणपार।

ग. आरण वाग्यां आय ।

घ. आछोड़ा ढिग आय ।

ङ. औगण गारा और ।

समान स्वरों की 'वयण सगाई' के अत्यधिक उदाहरण उपलब्ध हैं । इनसे सोरठों की शोभा बढ़ी है ।

५. असमान स्वर, स्वर और य, स्वर और व तथा य और व की वयण सगाई मध्यम कोटि की कहलाती है । इसके उदाहरण तलाश करने पर अत्यल्प ही मिलेंगे । कवि को यह भेद पसन्द नहीं रहा है । इनमें से केवल असमान स्वर के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं–

क. उद्यम करो अनेक ।

ख. आप रहै रजकण इसा ।

ग. इसड़ा तो उमराव ।

६. तवर्ग और टवर्ग, अल्पप्राण और महाप्राण की वयण सगाई अधम कोटि की कहलाती है । इसका प्रयोग करने के बजाए कवि ने वयण सगाई रहित पद्य की रचना करना अधिक ठीक समझा है । इस कारण इस कोटि की वयण सगाई के उदाहरण ढूँढने पर ही कठिनाई से मिलते हैं । यहाँ अल्प प्राण और महाप्राण के उदाहरण ढूँढ़कर दिए जा रहे हैं–

क. बिन मतलब विन भेद ।

ख. बड़ो सरम रो भार ।

ग. भरियो पण प्रापत बिना ।

कृपाराम के सोरठों में वयण सगाई का निर्वाह सहज ही हुआ है । अधिकांश सोरठों के चारों चरणों में इसका प्रशंसनीय प्रयोग है । इसका प्रयोग कवि का अपना एक गौरव बन गया है । इससे नाद-सौन्दर्य उत्पन्न हुआ है । कवि की अन्य रचनाओं में भी वयण सगाई का प्रयोग कुशलता से हुआ है । इसका प्रयोग कवि के सोरठों की तो पृथक् पहचान हो गई है । मूल सोरठों की पहचान करने के लिए यह कसौटी का काम करता है ।

कृपाराम ने शब्दालंकारों में राजस्थानी रंगत के अनुप्रास वयण सगाई का प्रयोग सुन्दरता एवं प्रचुरता से किया है । लगता है, जन कवि को अन्य शब्दालंकार-यमक, श्लेष-वक्रोक्ति आदि रुचिकर नहीं लगे हैं । शब्द-संयोजन में जो लालित्य अनुप्रास से आता है, वैसा अन्य अलंकारों से प्रकट नहीं होता । अन्य अलंकारों का आनन्द लेने के लिए पाठक में एक स्तर की भाव-भूमि एवं ज्ञान-

धरातल की आवश्यकता होती है तथा आनन्दानुभूति करने के लिए कुछ रुकना पड़ता है परन्तु अनुप्रास-प्रयोग तो एक गतिमान प्रवाह है, जिसका आनन्द सामान्य अनपढ़ व्यक्ति भी ले सकता है। इसमें सहज-श्रुति-माधुर्य गुण होता है। इसलिए जन कवि ने पंक्तिशः और शब्दशः इसका सहज और स्वाभाविक प्रयोग किया है। इसमें कवि को कहीं भी श्रम-साधना नहीं करनी पड़ी है क्योंकि कवि एक प्रतिभासम्पन्न 'शब्द-साधक' थे। अतः उन्होंने छेक, वृत्ति, श्रुति और अन्त्य नामक अनुप्रासों का खूब सरलता से प्रयोग किया है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है–

१. छेकानुप्रास (एक वर्ण की दो बार आवृत्ति होती है।)
   - क. कांच-क्रिपण बेकाज।
   - ख. कूड़ा कूड़ प्रकास।
   - ग. पाटा पीड उपाय।

२. वृत्यानुप्रास (एक वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होती है)
   - क. रोम-रोम री राजिया।
   - ख. कारण कटक न कोध।
   - ग. ठाकर ठाला ठोठ, ठुकराणी गिरवर जिसी।
   - घ. राम रुखालो, राजिया।
   - ङ. चालू चाकर चोर।

३. श्रुत्यानुप्राय (ध्वन्यात्मक आवृत्ति से उत्पन्न श्रुति-सौन्दर्य)
   - क. हाथळ बळ मोताहळा।
   - ख. अड़बा खड़बा आथ।
   - ग. हिम्मत किम्मत होय, बिन हिम्मत किम्मत नहीं।

यहाँ गहराई में जाकर अन्य अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया गया है क्योंकि कवि-प्रसिद्धि का मूलाधार तो अनुप्रास-प्रयोग ही रहा हैं। अतः इन्हीं के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। कृपाराम ने अर्थालंकारों में उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, उदाहरण, सन्देह, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग भी किया है परन्तु विस्तार भय से उनके उदाहरण देने की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

शैली—

कवि कृपाराम ने नीति, भक्ति और वीरतापरक रचनाएँ की हैं, जिनमें उन्होंने अग्रांकित शैलियों को अपनाया—

१. संबोधनात्मक २. स्तुतिपरक ३. प्रशस्तिपरक ४. नीति कथनात्मक ५. वर्णनात्मक ।

आगे इनका परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है–

१. संबोधनात्मक

कवित्त 'चालराय का' में अम्बिका, जगदम्बा, चालराय को संबोधित किया गया है । कवित्त-गीतों में भी चरित्र नायकों को संबोधित किया गया है । सूजा, देवा, देवता, देवीसिंह संबोधन प्रयुक्त हुए हैं । चालकनेच रो नाटक में भी ईश्वरी, चालकदेवी, जोगेश्वरी आई आदि नामों से संबोधित किया गया है । प्रत्येक सोरठा 'राजिया' को संबोधित करके कहा गया है । कवि की यह सर्वाधिक प्रिय शैली रही है ।

२. स्तुति परक

भगवान की भक्ति में प्रकट किये गये भाव; स्तुति के अन्तर्गत आते हैं । इनमें आत्मनिवेदन एवं समर्पण की भावना की प्रधानता रहती है । भक्त अपने आराध्य को अधिकाधिक निकट मानकर उसके गुणगान करता है । कवि कृपाराम की रचनाओं में आरती, भक्तिपरक गीत, कवित्त चालराय का, चालकनेच रो नाटक एवं स्फुट दोहे आदि में भगवद्-स्तुति पायी जाती है । ये सभी दुर्गा की आराधना में निवेदित रचनाएँ हैं । एक उदाहरण प्रस्तुत है—

विधि सरूप जग विविध, रचत तूं ही सुरराया ।
बिसन रूप तूं वणे, मंड पालत महमाया ।।
तूं कर धरे त्रसूल, रुद्र रूपा संघारत ।
तूं उतपति तूं सथत, तू ही जल अंबर न को तत ।।
सिच्चिदानंद रूपा सकत, तूं अनेक गत बिस्तरी ।
जगदम्ब एक तूं ही जननि, संतत बाला सुन्दरी ।।

—हे सुरराया, ब्रह्मा के रूप में तूने जग को अनेक रूपों में रचा है । हे महामाया, विष्णु रूप में तुम संसार का पालन करती हो । रूद्र रूप में तुम त्रिशूल धारण करके संसार का संहार करती हो । तुम ही उत्पत्ति हो, तुम ही स्थिति हो, तुम ही जल और आकाश तत्त्व-स्वरूपा हो । हे शक्ति, तुम सच्चिदानन्द-स्वरूपा हो । अनेक रूपों में फैली हुई हो, व्यापक हो । हे जगदम्बा, तुम ही एक माता हो और शाश्वत बाला सुन्दरी हो ।

३. प्रशस्तिपरक

व्यक्ति के गुणगान में कहा गया कथन प्रशस्ति के अन्तर्गत आता है ।

उसमें न्यूनाधिक रूप में अर्चना-याचना की भावना निहित होती है। कृपाराम के ऐतिहासिक वीररसात्मक डिंगल गीत एवं कवित्त ऐसी ही प्रशस्तिपरक रचनाएँ हैं। इनमें विजयसिंह, गोरधन सिंह खींची, सूरजमल सभासींघोत; जवानसिंह, देवीसिंह, हरिसींघोत, नवलसिंह केसरीसींघोत के लिए कहे गये कवित्त तथा सालिमसिंह मेड़तिया, राव देवीसिंह सीकर के लिए कहे गये डिंगल गीत मुख्यत: आते हैं। इनमें संबद्ध वीरों की प्रशस्तियाँ की गयी हैं।

४. नीति कथनात्मक

नीति कथन-शैली की परम्परा पुरानी है। इसका उद्गम संस्कृत साहित्य में देखा जा सकता है। संस्कृत-सुभाषितों का समाज में अत्यधिक सम्मान रहा है। इस शैली में अनेक उपशैलियों का सहारा लेकर कवियों ने नीति-कथन प्रस्तुत किये हैं। कृपाराम मूलत: नीतिकवि के रूप में ही समादृत हैं। उन्होंने अपने नीति-कथनों को अनेकविध सजाकर समाज के समाने रखे हैं। कवि ने कहीं प्रबोधन को प्रकट किया है तो कहीं हास्य-व्यंग्य के माध्यम से अपनी बात कहीं है। कहीं ध्वन्यात्मकता की झलक प्रभाव प्रकट करती लगती है। इसके अन्तर्गत कतिपय ध्वन्यात्मक चित्रों के उदाहरण प्रस्तुत हैं, जिनमें नाद-सौन्दर्य, वाक् वैचित्र्य एवं चमत्कार चातुर्य द्रष्टव्य हैं—

१. घोचो लाग्या घाव, घी गीहूं भावै घणा।
२. ठाकर ठाला ठोठ, ठुकराणी गिरवर जिसी।
३. गैला गंडक गुलाम, पुचकार्‌यां बाथां पड़ैं।
४. उपजावै अनुराग, कोयल मन हरखित करै।
५. कड़वो लागै काग, रसना रा गुण, राजिया।
६. हिम्मत किम्मत होय, बिन हिम्मत किम्मत नहीं।
७. ओखद रो कड़वास, रोगी गिणै न, राजिया।

उक्त शब्द-प्रयोगों की ध्वनि कानों में गूँजकर एक चित्र-सा उपस्थित करती है तथा एक नीति-भाव-तरंग को प्रवाहित करती है। औषधि का कड़वापन, काग की बोली का कड़वापन, रसना के गुण, तिनके का घाव, ठलुवे ठोठ ठाकुर, गैला गंडक गुलाम आदि ऐसे ध्वनि-चित्र हैं जो कानों के माध्यम से नेत्रों के सामने अदृश्य भाव से उपस्थित हो जाते हैं। जहाँ शब्द-ध्वनि से अर्थ की प्रतीति होती है, वहीं काव्य का गौरव बढ़ता है। कवि को इसमें सफलता मिली है। इनमें आन्तरिक तुक से भी ध्वनि-सौन्दर्य बढ़ा हैं। शब्द-ध्वनि उत्पन्न करके कवि ने सोरठों की शोभा को द्विगुणित किया है।

५. वर्णनात्मक—

इस शैली के अन्तर्गत कवि की ऋतु वर्णन संबधी रचना आती है। इस रचना में परम्परित काव्य-शैली में षट् ऋतु वर्णन हुआ है। प्रत्येक ऋतु पर एक-एक कवित्त कवि के प्रकृति प्रेम को प्रकट करनेवाला है। कवि ने अपनी रचनाओं में अनेक शैलीगत प्रयोग किये हैं जो कवि को साहित्य और समाज में गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में सहायक हुए हैं।

5

महत्त्व ग्रौर मूल्यांकन

कविश्री कृपाराम खिड़िया ने समाज के जीवन की राग में सहज भाव से ग्रपना स्वर मिलाकर ग्रपनी वाणी को धन्य कर लिया है। उन्होंने साहित्य में जो कुछ 'जोड़ा' उसे ही समाज के सामने रख दिया ग्रौर समाज ने उसे ग्रात्म भाव से ग्रहण कर लिया तथा वह जन-मन की धरोहर बन गया।

सोरठों की लोकप्रियता—

'राजिया के सोरठे' जन मन की वाणी के शृंगार बने हुए हैं। कथन की करामात बन गये हैं, उसकी संजीवनी शक्ति में सम्मिलित हो गये हैं। ये सोरठे कवि की एकमात्र ऐसी रचना है, जिसने कवि को जनमानस में सर्वोत्कृष्ट ग्रासन पर प्रतिष्ठित किया है। राजस्थानी समाज ने उन सोरठों को कहावत के रूप में सहज ही स्वीकार किया है तथा उनका प्रयोग कर वह ग्रानन्दानुभूति प्राप्त करता रहता है।

'राजिये रा सोरठा' की पूर्व-परम्परा से प्रकट होता है कि सम्बोधनात्मक नीति काव्य की दृष्टि से सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त करनेवालों में कृपाराम खिड़िया का नाम सबसे पहला है। ये सोरठे प्राचीन संग्रह के गुटकों या पोथियों से प्राप्त नहीं हुए हैं बल्कि लोक हृदय की पुस्तक में इनका संकलन-सम्पादन हुग्रा है जो इनके प्रति 'लोक रुचि' को प्रकट करते हैं।

शृंगार के क्षेत्र में जो सर्वाधिक लोकप्रियता ग्राज भी 'ढोला मारु रा दूहा' ग्रौर उजली-जेठवा रा सोरठा (दूहा) को मिली हुई है, वही लोकप्रियता नीति काव्य में 'राजिये रा सोरठा' को प्राप्त हुई है। ये सभी रचनाएँ पहले लोक में रमकर जनमुख से प्रकट हुई हैं। यह उनकी मूल विशेषता है, जो उनकी 'लोक रंगत' को भी प्रकट करती हैं 'काव्य की ग्रमरता' उसके भीतर तरंगित 'काव्य लहर' का लोक मानस से जुड़ाव पर निर्भर होती है। इस 'जुड़ाव' का सौभाग्य 'राजिये रा सोरठा' को मिला हुग्रा है। कवि ने लोक

से जुड़कर अपनी वाणी को 'लोक वाणी' का रूप दिया है। यही 'राजिये रा सोरठा' की अमरता का मूल कारण है।

कहा जाता है कि कवि ने लगभग पाँच सौ सोरठे कहे परन्तु अब तक जो सोरठे मिले हैं तथा विद्वानों द्वारा सुसम्पादित होकर साहित्य जगत के सामने आए हैं, उनकी अधिकतम संख्या १६५ रही है। अल्प संख्या में होते हुए भी ये कवि की कीर्ति-पताका को साहित्याकाश में शिखर से लहराने में सफल हुए तथा उसको लोक आकर्षण की वस्तु बना सके, यह उन सोरठों की सुरुचिपूर्ण सम्प्रेषणीयता ही है।

कवि का गौरव उसकी काव्य-संख्या से नहीं आँका जा सकता बल्कि उसकी लोक-प्रसिद्धि से जाना जाता है, यह बात कृपाराम के लिए अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई है। कवि केवल १६५ सोरठों से ही सर्वाधिक लोकप्रिय हो गया। ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि ये सोरठे नहीं, नीति रत्न हैं, जिनसे लोक-भाव-आभा का प्रस्फुटन हो रहा है।

कवि ने जो कुछ और जितना कहा है, वह सब अनुभवजन्य तथ्य ही है। जिसको कोई भी अपने पक्ष में प्रयुक्त कर सकता है। यह तथ्य न काल से बँधा है, न धर्म से तथा न वर्ग से। यह कवि की लोकप्रियता का एक आधार है। इससे इन सोरठों का महत्त्व और अधिक बढ़ा है।

राजिया के सौरठों के बल पर कविवर कृपाराम को राजस्थानी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। राजस्थानी भाषा की सरलता के साथ इनमें व्याप्त जादू भरा अर्थ चमत्कार विद्वानों को भी आकृष्ट करता रहा है। इनमें भाव-सौन्दर्य, व्यवहार-ज्ञान तथा नीति कुशलता का सार द्रष्टव्य है। इनका चुटीलापन एक प्रभाव छोड़ता है। मानव स्वभाव एवं समस्याओं का यथार्थ धरातल पर आकर्षक चित्रण करने में ये सफल हुए हैं। सूक्तियों-उक्तियों से मंडित ये सोरठे सभी पर अपनी छाप छोड़ते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि ये सोरठे समाज के जीवन प्राण 'राम' को साथ लेकर चले हैं।

कवि कृपाराम समाज द्रष्टा थे। इसलिए उसने सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भों में नीति संबंधी जो सार तत्त्व-प्रस्तुत किये हैं वे आज भी उतने ही उपादेय हैं, जितने कवि-युग में उपयोगी एवं यथार्थ-चिन्तन के अंग बने हुए रहे होंगे। आज भी उन नीति तत्त्वों से उपादेयता का सौरभ निकलकर सबको भाव विभोर कर रहा है। ये शाश्वत एवं युग-युगीन हैं। इनके संदेश-उपदेश समाज की निधि हैं। शाश्वत सत्य का उदघाटन एवं मानव

मूल्यों का चित्रण करना राजस्थानी नीति साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है। इसके दर्शन कविवर कृपाराम के सोरठों में किए जा सकते हैं।

'राजिये रा सोरठो' के संस्करणों की भूमिकाओं में व्यक्त विचारों से भी कवि का लोकप्रिय होना सिद्ध होता हैं। वि० सं० १६५६ में प्रकाशित एक संस्करण की भूमिका से संदर्भित उदाहरण देखिए—"यह बात जगत प्रसिद्ध है कि राजिये के दोहे अति चमत्कारी हैं और नीति से भरे हुए हैं जिनके लिए लोग चातक चन्द्र की भाँति उत्कंठित रहते थे और उनको यह आशा बनी रहती थी कि किसी तरह राजिये के दोहे हाथ लग जाए"—(बारहठ पीरदान) ये सब कवि की लोकप्रियता का उद्घोष करते हैं।

यह एक सुखद आश्चर्य है कि इतने कम सोरठों के आधार पर ही कवि की लोकप्रियता राजस्थान की सीमा पार कर गुजरात में भी जा जमी। राजिया के सोरठों ने गुजराती भाषा में भी अपनी लोकप्रियता बना रखी है। सोरठों के गुजराती रूप से परिचित होने के लिए कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

खोखारै खमां, हल् दल् नर हू कलृता।
सुख साथै समगमां, रती न आवै, राजिया॥
कूवां ढांकण कैक, महनत थी मलशेन की।
हैं नहि ढांकण हेक, रियण पेट नूं, राजिया[1]॥

राजिया के सोरठों की पैठ केवल अनपढ़ या सामान्य जन तक ही सीमित नहीं रही, उन्होंने विद्वानों के काव्य-हृदय को भी प्रभावित किया है, जिसके फलस्वरूप विद्वानों द्वारा कवि का यशोगान किया गया। इस प्रसंग में यहाँ डा. मनोहरजी शर्मा द्वारा रचित 'खिड़िया कृपारामजी रो जस[1] में से कतिपय दोहे प्रस्तुत किए जा रहे है—

कविवर किरपाराम रो, पुन पसरेयो अणपार।
सदा सुरगो सोरठा, सुरसत रो सिणगार॥ १॥
कविवर किरपाराम री, कीरत कथा अनूप।
लियो सुरगो सोरठा, जन वाणी रो रूप॥ २॥
आज राजियो रतन ज्यू, जण-जण में सरणाम।
सेवक नै स्वामी करयो, धन कवि किरपाराम॥ ७॥
रचना किरपाराम री, वाणी रो वरदान।
सुण कर सुगणा सोरठा, मूढ़ हुवै मतिमान॥ ११॥

---

१. द्रष्टव्य—मरु भारती (३३/१), पृ० १० (राजिया रा सोरठा)

इसी प्रकार डा. मनोहर जी शर्मा ने अनेक सोरठों का संस्कृत भावानुवाद किया है। जो कवि एवं काव्य दोनों के लिए विशेष गौरव की बात है।

कवि के सोरठों ने अपने सौष्ठव के बल पर सबको अपनी ओर आकर्षित किया है।

भाव-संपदा

कष्ट कल्पनाओं, पांडित्य-प्रदर्शन एवं शब्दाडम्बरों में भाव गांभीर्य के लिए अवसर कम होते हैं। कवि की अधिक शक्ति इन्ही के ताने-बाने में लग जाती है। भाव-गांभीर्य के लिए चिन्तन की गहराई, अभिव्यक्ति की उच्चता एवं विषय के प्रति संवेदनशीलता का होना आवश्यक माना गया है। इनके अभाव में उस भाव-भूमि का निर्माण नहीं हो सकता है, जो कि एक कुशल कवि को भाव-गांभीर्य के लिए चाहिए।

कृपाराम की सम्पूर्ण रचनाओं में यदि भाव-गांभीर्य को देखना चाहें तो इसे स्वीकार करना होगा कि उनकी सब रचनाओं में समान स्तर से भाव गांभीर्य देखने को नहीं मिलता हैं। कवि को स्तुति एवं प्रशस्तिपरक रचनाओं में भाव गांभीर्य लाने के अवसर कम मिले हैं। कवि के ऋतु वर्णन में दृश्य चित्रण की प्रधानता है। अपने आराध्य की स्तुति में संभवत: कवि ने भगवद् भक्ति, श्रद्धा, भाव-तल्लीनता एवं चित्रोपमता का विशेष ध्यान रखा है। इनमें भाव प्रदर्शन अवश्य हुआ है। 'कवित चालूराय' का और 'चालकनेच रो नाटक' में नृत्य, संगीत तथा नाद-सौन्दर्य की झलक तो मिलती है परन्तु इनमें वैसी भावों की गहराई नहीं पाई जाती जो एक लोकप्रिय रचना में देखने को मिलनी चाहिए। यही स्थिति कवि के कवित्त और डिंगल गीतों में हैं। कवि की केवल एक गरिमामय रचना है, जिसमें भाव-गांभीर्य की सर्वाधिक प्रमुखता है, और वह है 'राजिये रा सोरठा'।

इन सोरठों में मुख्यत: समाज का दृश्यांकन हुआ है। कवि के समय के समाज में सभी स्तर, श्रेणी एवं वर्ग के लोग थे। उन सब पर कवि की दृष्टि गई हैं। कवि ने सभी के कार्य-कलापों नैतिक, स्तर, मनोवृत्तियों आदि को निकट से निरखा-परखा था। इन सबके समन्वित स्वरूप को देखना ही समाज-दर्शन के अन्तर्गत आता है।

बल-विक्रम, विवेक, कौशल, शक्ति-संगठन, सैन्य-संचालन क्षमता, उद्बोधन आदि से युक्त एक सोरठा देखिए जिसमें अद्वितीय भाव-गुम्फन है। आज भी इसकी सार्थकता अक्षुण्ण है।

कारण कटक न कीध, सखरा चाहीजै सुपह।
लंक विकट गढ लीध, रींछ-बानरां, राजिया॥

विजय प्राप्त करने का कारण बड़ी सेना नहीं होती हैं। उसके लिए कुशल और दक्षसेनापति चाहिए। भंयकर विकट लंकागढ़ को रीछ और वानरों ने ही जीत लिया'

कुशल नेतृत्व ही सदा सबको साथ लेकर सफलता की ओर ले जानेवाला होता हैं। अकेली भीड़ निरर्थक ही बनी रहती है। यहाँ (रीछ एवं वानरों) का प्रयोग बड़ा सटीक है तथा अनियंत्रित भीड़ का एक दृश्य-सा उपस्थित कर देता है। इन्होंने ही कुशल नेतृत्व पाकर जीवन की सर्वोच्च सफलता प्राप्त की प्रभु (सेनापति) महिमा के साथ-साथ कवि ने इस सोरठे में आज के युग की बात भी कह डाली है तथा बल-बुद्धि के द्वारा जन-शक्ति को अपने वश में करके सफलता प्राप्त करने के एक शाश्वत सिद्धान्त को एक नया स्वर दिया है। राज्य-संचालन का भी यही रहस्य है। सक्षम नेतृत्व के अभाव में राज्य नष्ट होते रहे है, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। राज्य और समाज ही नहीं, व्यक्तिगत कार्यों में भी कुशल नेतृत्व सिद्धिदायक होता है। ये सभी बातें एक सौरठे से एक साथ प्रकट हो रही हैं।

एक अन्य सोरठे में कवि ने श्वान-प्रकृति एवं गजराज की मन-मस्ती स्वतंत्र गतिमति का चित्रण ही नहीं किया है, उनके साथ अपने दम्भ एवं अहं की तुष्टि करनेवाले उन लोगों पर करारा व्यंग्य भी किया है, जो व्यर्थ में अनावश्यक रूप से परदोष दर्शन में लगे रहते हैं तथा 'भौंकते' रहते हैं। इस संबंध में एक सौरठा नीचे प्रस्तुत है—

गह-भरियो गजराज, मद छकियो चालै मतै।
कूकरिया बे काज, रुगड़, भुसैकिम, राजिया॥

(गर्व से भरा हुआ मद से परिपूर्ण गजराज अपने मन की मौज में चलता है। नीच कुत्ते व्यर्थ ही उसके पीछे क्यों भौंकते हैं)।

इसमें 'मतै' कूकरिया 'किम' शब्दों का प्रयोग अपना विशिष्ट अर्थ रखते हैं। कवि ने 'हाथी के पीछे कुत्ते यो हीं भौंकते रहते है' कहकर ही संतोष नहीं कर लिया है बल्कि अपने मनोभावों को सार्थक अभिव्यक्ति दी है। स्वतंत्र गति मति से चलनेवाले (चालै मतै) लोग आलोचना की परवाह किए बिना अपना कार्य करते रहते है। 'कूकरिया' शब्द कवि ने उन निम्न स्तर के आलोचकों के लिए प्रयुक्त किया है जो भीड़ बनकर निरर्थक भौंकते रहते रहते है। यह बहुत सुन्दर प्रयोग है। इसमें कवि का सरल कथन ही नहीं प्रकट हुआ है, बल्कि प्रबोधन भी प्रकट हुआ है कि वे क्यों भौंकते है? उनको नहीं भौंकना चाहिए तथा उनको भी उच्च विचारवाला होना चाहिए। केवल दूसरों पर 'छींटा कशी' करने मात्र से प्रगति होनेवाली नहीं हैं, आलोचना

अच्छी बात है परन्तु 'वेकाज' होना बुरी बात है। इस से स्वयं का स्तर ही गिरता है, 'गजराज' का कुछ नहीं बिगड़ता है आदि अनेक भाव इस सोरठे में अभिव्यक्त हुए हैं। आज भी समाज में ऐसे लोग है तथा कवि काल में भी उनकी कमी नहीं थी। इसलिए यह सोरठा रोचक, उद्बोधक एवं प्रभावशाली बना हुआ है।

भाव गांभीर्य के कतिपय उदाहरण और प्रस्तुत हैं—

वीरों–उमरावों का अनादर—

नान्हा मिनख नजीक, उमरावां आदर नहीं।
ठाकर उरा नै ठीक, रण में पड़सी, राजिया ॥

अराजकता–अव्यवस्था—

गुण औगुण जिण गांव, सुणै न कोई सांमलै।
मच्छ-गलागल मांय, रहणो मुश्कल, राजिया ॥
खल गुड़ अणकूताहं, एक भाव कर आदरै।
ते नगरी हूंताह, रोही आछी, राजिया ॥

बल—विक्रम

हिम्मत किम्मत होय, बिन हिम्मत किम्मत नहीं।
करै न आदर कोय, रद कागज रो, राजिया ॥

दुष्टों - दुर्जनों के साथ व्यवहार—

गुण सूं तजै न गांस, नीच हुवै डर सूं नरम।
मेल लहै खर-मांस, राख पड़ै जद, राजिया ॥

कवि-प्रतिभा

कवि और उसके काव्य का महत्त्व उसकी गहराई, सम्प्रेषणीयता, भाव, भाषा, अभिव्यक्ति, आदि से प्रकट होता है। काव्य-गुणों के आधार पर ही कोई रचना सजीव, मोहक और लोकप्रिय बन पाती है। किसी रचना का जनप्रिय होना कवि के लिए विशेष गौरव की वस्तु हैं। वे कवि सौभाग्यशाली हैं, जिनकी रचनाएँ लोक हृदय पर अपना आसन जमा लेती हैं और सामान्य जन रस ले-लेकर उनको कहते-सुनते हैं। यही कवि एवं काव्य की सार्थकता है।

कृपाराम ने अपने जीवन-काल में पूर्ण सफलता प्राप्त की तथा अतुल काव्य-कीर्ति अर्जित की। यह तथ्य तत्कालीन शासकों—जोधपुर, उदयपुर आदि से उनके सम्पर्क से प्रमाणित होता है। सीकर संस्थान (ठिकाना) में वे एक कवि के रूप में आए तथा रावराजा लक्ष्मणसिंह के शासन-काल में वे कवि के

साथ-साथ राज्य कार्य में विशेष सलाहकार के रूप में भी सम्मानित रहे। उनको 'सासरा' के रुप में अनेक बार कई गाँव और कृषि-भूमि मिली। उनको सीकर शासक के द्वारा हाथी, सिरोपाव, अतुल धनराशि आदि सम्मानपूर्वक मिले। ये सब उनकी ख्याति को प्रमाणित करते हैं। राजनीति में दक्ष तथा लोकनीति विज्ञ कवि के रूप में कृपाराम अपने कार्यों के द्वारा लक्ष्मणसिंह के शासनकाल में प्रसिद्ध हो चुके थे, ऐसा 'सीकर का इतिहास' (पं. झाबरमल्ल शर्मा) से प्रमाणित होता है।

सुकवि कृपाराम संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। संस्कृत से राजस्थानी में रूपान्तरित उनकी सूक्तियाँ इस बात के प्रमाण हैं। उनके अनेक सोरठे संस्कृत श्लोकों के अनुवाद होते हुए भी अपनी सरलता, स्वाभाविकता, तथा रोचकता के कारण मौलिक से लगते हैं। ये कवि के काव्य-कौशल को प्रकट करते हैं। डिंगल एंव पिंगल पर भी उनका अधिकार था। यह क्षमता उनको परम्परा से प्राप्त थी। उसमें अपनी मौलिक सूझ-बूझ लगाकर कवि ने अपनी डिंगल और पिंगल की रचनाओं को और अधिक रोचक बनाया। इस तथ्य को उनके गीतों और कवित्तों में देखा जा सकता है। भावों की तल्लीनता, नाद सौन्दर्य, चित्रोपमता इन डिंगल-पिंगल की रचनाओं के विशेष गुण हैं। कवि को संगीत, नृत्य एवं काव्य शास्त्र का भी ज्ञान था। अपने समय में प्रचलित सभी प्रमुख रचना-विधाओं में कवि ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की परन्तु सोरठा कवि का सर्वाधिक प्रिय छंद रहा है। उस काल में सोरठों में नीति काव्य लिखना अत्यधिक लोकप्रिय था। इसी बात से कृपाराम भी प्रभावित हुए हैं। कवि ने सोरठों की भाषा सरल-सुबोध बोल-चाल की राजस्थानी रखकर अपने नीति काव्य को लोक की वस्तु बना दिया। इसमें वयण सगाई अलंकार का जो प्रवाहमय प्रयोग हुआ है, उसने तो कृपाराम के सोरठों की एक पृथक् पहचान बना दी है।

कवि ने प्रकृति चित्रण पर भी अपनी लेखनी चलाई है परन्तु इस रचना में परम्परा की जकड़ ज्यादा है। टीटूडी, बाज, भंवरा, पेदिया, कोयल, काग, सूर्य, चन्द्रमा, डूंगर, नभचर, पंछी, वन, सिंह, पेड़, पौधे, तालाब, नदी, सागर, मेंढक, मछली, कमल, रेगिस्तान, मृग आदि का उल्लेख करके कवि ने अपने प्रकृति प्रेम को प्रकट किया है।

कवि लोक-हृदय की धड़कन को पहचानने में भी बड़ा कुशल था। इसलिए उसकी पैनी दृष्टि समाज के सभी वर्गों के लोगों पर पड़ी और उनकी अनेक मुख्य बातें कवि को प्रभावित कर गयी। समाज में नौकर-चाकर, सेवक, कंजूस, दानी, वीर, कायर, कृतघ्न, उमराव, कुमाणस, रोटी चरखा राम का

ध्यान रखनेवाली बुढ़िया, गैला, गडँक, गुलाम, ठाला ठाकर, आदि सभी से कवि प्रभावित हुआ है और इनके चरित्रों को उसने अपनी कलम पर कसा है। कवि के इस जुड़ाव ने उसे लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा प्रदान करने में योग दिया है। वस्तुत: जन सामान्य से जुड़ाव उसकी प्रसिद्धि का एक कारण बना है।

कृपाराम सीकर नरेश की सभा के रत्न थे। वे दरबार में रहकर भी 'दरबारी कवि' नहीं थे। उनका अपना स्वतंत्र और सम्मानित व्यक्तित्व था। इसलिए वे उमरावों, नरेशों, शासकों तथा सैनिक ठाकुरों के विषय में अपने स्वतंत्र विचार व्यक्त कर सके। तत्कालीन अव्यवस्था की स्थिति ने कवि के मानस को झकझोर दिया। इसलिए कहीं-कहीं कवि के क्रोध का स्वर भी उनके सोरठों में प्रकट हुआ है।

कृपाराम नीति, भक्ति और वीर रसात्मक रचनाओं के कुशल रचयिता थे। अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर वे राजस्थानी साहित्य के देदीप्यमान उज्ज्वल रत्न थे। महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने कृपाराम के लिए 'वंश भास्कर' में लिखा है—'पीरू कृपाल भैरव प्रमुख, कविजन चारण वंश गनै। इसी प्रकार कविराजा भैरवदान (बीकानेर) ने भी चारण जाति के प्रसिद्ध कवियों का नामोल्लेख करते हुए लिखा है—'किरपादिराम कवि भो पुनीत, जिन रचि उत्तम राजिया नीति।' इन कथनों से खिड़िया कृपाराम का साहित्य जगत में महत्व एवं मूल्याकंन प्रकट होता है। राजस्थानी साहित्य जगत में विचरण करनेवाला ऐसा कोई विद्वान नहीं रहा होगा। जिसको कृपाराम के काव्य ने प्रभावित न किया हो। क्या विद्वान और क्या अनपढ़ सभी काव्य रसिकों की रसना पर कवि का काव्य रमा हुआ है। कवि का यह सबसे बड़ा सौभाग्य है। उसके काव्य का महत्त्व इस प्रकार प्रकट किया गया है—

चारण-कुल रो च्यानणों, दीपै किरपाराम।
निरमल कवि-वाणी हुई, जन-वाणी सरणाम (३)

(डा. मनोहर शर्मा)

(चारण कुल का प्रकाश कृपाराम चमक रहा है। कवि की निर्मल वाणी जनवाणी के रूप में जग-प्रसिद्ध हुई है।)

'वयण सगाई' की अजस्र रसधारा में निमग्न, सरल, सुगम, सुबोध, राजस्थानी भाषा में निखरी हुई और अपने शब्द-शिल्प से सजी हुई कृपाराम की काव्य-धारा अपने समय के जीवन की राग में भावों को प्रस्तुत करती हुई प्रवहमान रही है। उनकी इस प्रतिभा से सभी प्रभावित हुए हैं। काव्य दृष्टि से खिड़िया कृपाराम एक सर्वाधिक जनप्रिय कवि हैं और राजस्थानी साहित्य के नीति कवियों में आपका गौरवपूर्ण स्थान है।

6

रचनाओं से चयन

राजिये रा सोरठा

अड़बा-खड़बा आथ, सुदतारां विलसै सदा ।
सूमां चलै न साथ, राई जितरी, राजिया ।। १ ।।

(दानी लोग अरबों-खरबों की सम्पत्ति का उपभोग सदा करते हैं परन्तु कंजूस किसी को कुछ नहीं देते जब कि राई जितनी थोड़ी-सी भी सम्पत्ति उनके साथ नहीं जाती । कंजूस की सम्पत्ति यों ही पड़ी रह जाती है ।)

अदतारां घर आय,[1] जे क्रोड़ां सम्पत जुड़ै ।
मौज दैण मन मांय, रती न आवैं, राजिया ।। २ ।।

कंजूस-अदातारके घर में यदि करोडों की सम्पत्ति आकर भी एकत्र हो जावे तो भी राजी-खुशी अपने मन की मौज़ से किसी को इनाम देनेकी उसके मन में ज़रा भी नहीं आती ।)

अधम सहै अपमान, वार-वार वार्‌या-थकां ।
सरम-विहूणा श्वान, रखड़ै घर-घर, राजिया ।। ३ ।।

(बार-बार बचाव करने पर भी-वार्‌या थकां-अधम व्यक्ति अपमानित होते रहते हैं जैसे लज्जाहीन कुत्ते घर-घर भटकते फिरते हैं तथा बार-बार वहाँ अपमानित होते रहते हैं ।)

अरहट-कूप तमाम, ऊमर लग न हुवै इतो ।
जलहर एकै[2] जाम, रेलै सब जग, राजिया ।। ४ ।।

(कूवे का अरहट जीवन भर चलकर भी इतना पानी नहीं निकाल सकता और बादल-दानी-एक ही पहर में सारे संसार को जल से आप्लावित कर देता है ।)

प्रस्तुत पाठ और पाठान्तर प्रो. नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादित 'राजिये रा सोरठा' से लिए गए हैं । पाठ का मिलान अन्य विद्वानों द्वारा सम्पादित-प्रकाशित कवि के सोरठों के आधार पर कर लिया गया है ।

पाठान्तर : १. माठा रै घर माय-माठोड़ा घर मांय २. ऐकी

अवनी रोग अनेक, ज्यां रा विध कीधा[1] जतन ।
इण परक्रिति री एक, रची न ओखद, राजिया ।। ५ ।।

(धरती पर अनेक प्रकार के रोग हैं । विधाता ने उन सबके उपचार बनाए हैं परन्तु इस मानव स्वभाव-प्रकृति-की कोई एक भी दवा विधाता ने नहीं बनाई है अर्थात् मनुष्य के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता ।)

अवसर पाय अनेक, भावैं कर भूंडी-भली ।
अन्त समे गत एक, राव-रंक री, राजिया ।। ६ ।।

(मनुष्य-जीवन मैं अनेक अवसर-अच्छा समय-आते हैं । उस समय चाहे बुराई करलो और चाहे भलाई करलो अर्थात् उसका सदुपयोग करो या मत करो परन्तु यह ध्यान में रखो कि अन्त समय में धनी और निर्धन-छोटा और बड़ा राव और रंक-सब की एक ही गति होती है अर्थात् सबको संसार छोड़कर जाना पड़ता है)

अवसर मांय अकाज, 'साम्हों'[2] बोल्यां सांपजै ।
करणो जै सिध काज, रीस न कीजै, राजिया ।। ७ ।।

(यदि कार्य को सफल बनाना है—सिद्ध करना है—तो कभी क्रोध नहीं करना चाहिए । क्रोध में आकर सामने बोलने, वाद-विवाद करने से मौक़े पर कार्य में विघ्न पड़ जाता है ।।

असली[3] री औलाद, खून कर्‌यां न करै खता ।
वाहै वद-वद बाद, रोढ दुलाता, राजिया ।। ८ ।।

(जो असली शुद्ध सात्विक की संतान होता है, वह दूसरों के द्वारा अपराध-खून-करने पर भी उसे हानि-खता, कष्ट-नहीं पहुचाता परन्तु वर्णसंकर-खच्चर, दोगले-हठ पूर्वक बढ़-बढ़ कर दुलत्तिया मारता है ।)

अहला जाय उपाय, आछोड़ा करणी अहल[4] ।
दुसट किणी ही दाय, राजी हुवै न, राजिया ।। ९ ।।

(दुष्ट किसी भी उपाय से प्रसन्न नहीं होते । उनको प्रसन्न रखने के लिए सभी प्रकार के उपाय व्यर्थ जाते हैं और उनके प्रति की हुई भलाई भी व्यर्थ जाती है । दुष्टों के स्वभाव में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होता है ।)

आगै मिलै न अन्न, रंक पछै पावै रिजक ।
मैला ज्यांरा मन्न, रहै सदा ही, राजिया ।। १० ।।

(जिसको पहले गरीबी के कारण खाने को अन्न नहीं मिला करता था और उस

पाठान्तर : १. कीना २. सामो ३ असली री-आराक्या-घोडों की
४. अवर अहर–असफल विफल, व्यर्थ ।

रंक को आगे चलकर खूब धन (रिजक) मिल जाता है तो भी उसके मन का मैला-पन [ओछापन] सदा ही बना रहता हैं। ग़रीबी दूर होने पर भी उसका मन सदा मैला या ओछा ही बना रहता है।)

आछा जुध अणपार, धार, खगां सनमुख धसै[1]।
भोगै[2] होई भरतार, रसा[3], जिके नर, राजिया ।। ११ ।।

(जो वीर अनेक भयंकर युद्धों में तलवार की धार के सम्मुख कूद पड़ते हैं, वे ही जीवित रहने पर पृथ्वी के भरतार होकर उसे भोगते हैं।)

आछा हूवै[4] उमराव, हिया-फूट ठाकर हुवै ।
जड़िया लोह जड़ाव, रतन न फावै[5], राजिया ।। १२ ।।

(यदि ठाकुर-मालिक-महामूर्ख हृदय का अंधा हो और उसके सरदार अच्छे गुणवान हों तो वे सभी उसी प्रकार शोभा नहीं देते जिस प्रकार लोहे में जड़ने से रत्न की शोभा नहीं होती।)

आछोड़ां ढिग आय, आछा[6] यूं भेला हुवैं ।
ज्यूं सागर में जाय, रलै नदी-जल, राजिया।। १३ ।।

[अच्छे मनुष्यों के निकट आकर अच्छे आदमी इस प्रकार एकत्रित हो जाते हैं जिस प्रकार सागर में जाकर नदी-जल घुल मिल जाता है।]

आछो मान अमाव, मत हीणा केई[7] मिनख ।
पुटिया की[8] ज्यूं पाव, राखै ऊपर, राजिया ।। १४ ।।

[कई मति हीन मनुष्य ऐसे होते हैं कि जिनको ऊँचा सम्मान मिलने पर वे गर्व से फूल जाते हैं, अपनी अकड़ में रहते हैं जैसे पुटिया [पिदिया] नामक छोटा-सा पक्षी यह सोचकर अपने पैर ऊपर करके सोता है कि यदि आकाश गिरेगा भी तो वह उसे अपने पैरों के ऊपर ही रोक लेगा। उसी प्रकार वे अपने आपको अधिक समझने लग जाते हैं।]

आवै नहीं इलोल, बोलण-चालण री विविध ।
टीटोड़्या रा टोल, राजहंस री, राजिया ।।१५।।

(टिटहरियों-टिट्टिभ पक्षियों का झुंड की टोली में रहते हुए गुणी राजहंस के समान बोलने चलने के विविध तरीक़े नहीं आ सकते जैसे संस्कृतिहीन लोगों की संगति में रहने से शिष्ट तथा सुसंस्कृत लोगों के समान बोलने-चलने के नाना प्रकार के तरीक़े नहीं सीखे जा सकते।]

आहव[9] नै आचार, वेलूया मन आधो वधै ।
समझ कीरती-सार, रंग छै ज्यांनै, राजिया ।।१६।।

[कीर्ति के सार-तत्त्व को अर्थात् कर्तव्य पालन के मर्म को भली प्रकार समझकर

पाठान्तर : १. धसी २. भोगी सोई ३. रह्या ४. हुवै ५. पावै
६. आछोड़ा भेला हुवै ७. कोई ८. के ९. समहर—युद्ध

युद्ध और सदाचार के अवसर पर जिनका मन उत्साह से आगे बलढ़ा है, उन लोगों को रंग है, धन्यवाद है।]

इण ही सूं अवदात, कहणी सोच-विचार कर।
बे-मौसर री बात, रूड़ी लगै न, राजिया ।। १७ ।।

[जो बात कहनी हो उसे सदा सोच-विचार कर कहना चाहिए, वही हितकारी रहती है। इसी में भलाई है। बिना मौके कही हुई बात कभी किसी को अच्छी नहीं लगती।]

उण ही ठाम अरोग, भांजण री मन में भणै।
आ तो बात अजोग, राम न भावै, राजिया ।। १८ ।।

[जिस बर्तन में भोजन करे और भोजन के बाद उसी को फोड़ने का मन में विचार करे, यह कृतघ्नता की बात सर्वथा अनुचित है। यह बात भगवान को भी भली नहीं लगती है।]

उद्यम करो अनेक, भावै[1] अण-उद्यम रहो।
होसी निहचै हेक, राई[2] घटै न, राजिया ।। १९ ।।

(चाहे कोई अनेक उद्यम-प्रयत्न-करे अथवा भावै-चाहे बिना उद्यम किए रहे, अन्त में निश्चित रूप से वही एक बात होगी जो परमात्मा करेगा। उससे रत्ती भर भी कम नहीं होगी।]

उपजावै अनुराग, कोयल मन हरखित करै।
कड़वो लागै काग, रसना रा गुण, राजिया ।। २० ।।

[कोयल तो सबके मन को हर्षित करती है तथा प्रेम उपजाती है परन्तु कौआ सबको कड़वा-खारा लगता है। यह सब जीभ का गुण (वचनरस) ही तो है।]

ऊँच नीच अन्तराय, कारत कीधी किरतवां।
मिनख-जमारै मांय, रहै भलाई, राजिया ।। २१ ।।

[ऊँची-नीची अनेक विघ्न पूर्ण स्थितियों में अपना कर्तव्य पूरा करके वीरों ने सुयश प्राप्त किया है। मनुष्य जीवन में केवल भलाई (अच्छे कामों का यश) ही क़ायम रहती है। शेष सब कुछ नाशवान है।]

ऊँचै गिरवर आग[3], जलती सह देखै जगत।
पण बलती[4] निज पाय[5], रती न सूझै, राजिया ।। २२ ।।

[बहुत दूर स्थित ऊँचे पहाड़ पर जलती हुई आग को सारा संसार देख लेता है परन्तु अपने ही पैरों के पास जलती हुई आग किसी को ज़रा भी दिखलाई नहीं पड़ती। अपना दोष किसी को नहीं दिखता।]

पाठान्तर : १. अथवा अण-उद्यम करो २. राम करै सो, राजिया ३. सो
४. जलती ५. पाग

एक जतन सत एह, कूकर कुगन्ध कुमाणसां ।
छेड़[1] लीजै छेह, रैवण दीजै, राजिया ।। २३ ।।

[यही एक सबसे सही (सत) उपाय है कि कुत्तों, दुर्गन्ध और दुष्ट लोगों को छेड़कर उनका अन्त (अन्तिम स्थिति तक की जानकारी) नहीं लेना चाहिए। उनका अन्त लेवोगे तो वे पीछे पड़ जायेंगे। उनको दूर ही रहने देना चाहिए।)

ऐस अमल आराम, सुख उछाह भेना सयण ।
होकां बिन हंगाम, रंग रा हुवै न, राजिया ।।२४।।

[आनन्द, विलास, अफीम का सेवन, विश्राम, सुखदायक उत्सव, मित्रों की गोष्ठी-गोठ-मजलिस—ये सब हुक्के के बिना आनन्ददायक नहीं होते, जमते नहीं ।]

औगण-गारा और, दुखदायी सारी दुनी ।
चालू-चाकर चोर, रांधै छाती, राजिया ।।२५।।

[चालाक नौकर और चोर दुर्गुणी होते हैं तथा सारी दुनिया के लिए दुखदायी होते हैं एवं वे छाती जलाते रहते हैं, सदा भारी पीड़ा देते हैं ।]

औरूं अकल उपाय; कर आछी भूंडी म[2] कर ।
जग सह[3] चाल्यो जाय, रेला री ज्यूं, राजिया ।।२६।।

[पुनः गहराई से सोच-विचार करके सदा भलाई ही करो, बुराई (भुंडी) कभी मत करो । देखो-समझो, सारा संसार जल-प्रवाह (रेला) की भाँति निरन्तर काल के मुंह में चला जा रहा है अर्थात् यहाँ कोई रुकनेवाला नहीं है । अतः भलाई ही करो ।]

कठण पड़ै जद काम, हाम पकड़ गाढ़ो रहै ।
तो अलवत ही ताम, राम बलू[4] हुवै, राजिया ।२७।।

[जब कोई कठिन काम आपड़े अर्थात् संकट का समय आ जावै, उस समय यदि मनुष्य हिम्मत रख कर दृढ बना रहे, घबरावे नहीं तो अलवत (निश्चय) ही भगवान उसके सहायक होते हैं ।]

कण मुकता धन कोस, भरियो पण प्रापत बिना ।
दीजै कांसू दोस, रयणायर नै, राजिया ।।२८।।

[समुद्र में अनेक रत्न, मोती, अपार धन के खज़ाने आदि भरे पड़े हैं परन्तु यदि वे सामान्य आदमी को प्राप्त न हो सके तो इसमें रत्नाकर को दोष किसलिए दिया जावे ?]

कनवज दिलीस काज, वै सांवत पखरैत वै ।
रुलता[5] देख्या राज, रवताण्यां वस, राजिया ।।२९।।

पाठान्तर : १. न २. न ३. सौ ४. भली हुवै ५. रुलग्या

[कन्नौज के राजा जयचन्द गाहड़वाल और दिल्ली के स्वामी पृथ्वीराज चौहान के पास अपना राज चलाने के लिए वैसे सामन्त, वैसे ही बहादुर योद्धा आदि थे परन्तु स्त्रियों (रवतारिणयों—रावत पत्नी) के वश में होकर वे सब नष्ट हो गए। उनके राज्य के राज्य बर्बाद होते देखे गए हैं।]

करै न संका कोय, गांव-धरणी संभड़ गिणै।
रीत[1] बराबर होय, रोलगट्ट[2] में, राजिया ॥३०॥

[अराजकता की स्थिति में कोई किसी की शंका नहीं करता। गाँव के स्वामी को लोग तुच्छ समझने लगते हैं। प्रजा बराबर हो जाती है अर्थात् छोटे-बड़े अथवा भले-बुरे का कोई भेद-विचार ही नहीं रहता।]

कहणी जाय निकाम, आछोड़ी आणी उकत।
दामां-लोभी दाम, रंजै न बांतां, राजिया ॥३१॥

[धन का लोभी बातों से जरा भी राजी नहीं होता। उसके सामने अच्छी-सुन्दर उक्तियों का कहना सब व्यर्थ होता है। वह तो केवल दामों से ही प्रसन्न होता है।]

कही न मानै काय, जुगती अण-जुगती जठै।
स्याणां नै सुख पाय, रहणो चुप[3] ह्वै, राजिया ॥३२॥

[जहाँ कोई किसी का कहना नहीं मानता तथा उचित और अनुचित बात का विवेक नहीं होता, वहाँ पर समझदार को शान्त भाव से (सुखमानकर, गमखाकर) चुप होकर रहना चाहिए।]

काम न आवै कोय, करम-धरम लिखिया किया।
घालो हींग घसोय, रूकां विचालै, राजिया ॥३३॥

[केवल कागज़ों पर लिखे हुए कर्म और धर्म कोई काम नहीं आते। ऐसे काग़ज़ के टुकड़ों में तो घिस-घिस कर हींग रखो जिससे कि इस लिखावट की गंध तक समाप्त हो जाए। अर्थात् केवल आचरण ही धर्म का आधार है।]

कारज सरै न कोय, बल्-प्राक्रम हिम्मत बिना।
हल्कार्यां की होय, रंग्या-स्याल्ां, राजिया ॥३४॥

[कोई भी काम बल, पराक्रम और हिम्मत के बिना पूरा नहीं हो सकता। बनावटी वीरों—रँगे सियारों को ललकार कर जोश दिलाने से क्या हो सकता है? अर्थात् कभी कुछ भी नहीं होता।]

कारण कटक न कधी, सखरा चाहीजे सुपह।
लंक विकट गढ लीध, रींछ-बानरां, राजिया ॥३५॥

पाठान्तर : १. रैत २. रोल् दट्ट ३. चुपको

(युद्ध जीतने का मूल कारण बड़ी सेना का होना नहीं है बल्कि विजय के लिए श्रेष्ठ कुशल सेनापति सुपह-सुप्रभु होना चाहिए जैसे विकट लंका गढ़ को कुशल सेनापति भगवान राम के निर्देशन में साधारण रीछ-वानरों ने ही जीत लिया।)

काली घणी[1] करूप, कसतूरी कांटां तुलै[2]।

सक्कर घणी[3] सरूप, रोड़ां तुलवै[3], राजिया।३६॥

(कस्तूरी एकदम काली एवं कुरूप होती है फिर भी मूल्यवान होने के कारण सोना-रत्न आदि तोलने के छोटे तराजू में, माशो-तोलों में तुलती है और शक्कर अत्यधिक सुन्दर होते हुए भी कीमती न होने के कारण बड़े तराजू में पत्थर के बड़े बाँटों से तुलती है। अर्थात् गुणवान का मोल होता है, आन्तरिक गुण की कीमत होती है।)

कीधोड़ा उपकार[4], नर क्रितधण मानै[5] नहीं।

लानत दे ज्यां लार, रजी उड़ावौ, राजिया॥३७॥

(कृतघ्न पुरुष किसी के द्वारा किए हुए किसी उपकार को नहीं मानते। ऐसे लोगों को धिक्कारना चाहिए और उनके पीछे धूल उड़ानी चाहिए।)

कुटिल निपट नाकार, नीच कपट छोड़े नहीं।

उत्तम करै उपकार रूठा-तूठा, राजिया॥३८॥

(एकदम दुष्ट, निकम्मे और नीच—ये सब कभी भी कपट का त्याग नहीं कर सकते और श्रेष्ठ पुरुष प्रसन्न होने पर या चाहे नाराज होने पर भी सदा दूसरों का उपकार ही करते हैं।)

कूड़ा कूड़ प्रकास, अण दीठी मेलै[6] इसी।

उड़ती फिरै[7] अकास, रजी न लागै, राजिया।३९॥

(झूठे लोग कभी न देखी हुई (अणदीठी) अनहोनी, निराधार और बेसिर-पैर की ऐसी झूठी बातें उड़ाते हैं जो आकाश में ही उड़ती-फिरती हैं, धरती की धूल उनको छू तक नहीं पाती अर्थात् जिनके पैर जमीन पर नहीं टिकते जिनका कोई आधार नहीं होता, जिनका वास्तविकता से कोई संबंध नही होता)

कूड़ा निलज कपूत, हिया—फूट ढांढा असल।

इसड़ा पूत अऊत, रांड जणै क्यू, राजिया॥४०॥

(जो झूठे निर्लज्ज्, ज्ञानहीन, पशु तुल्य बेकार कुपुत्र वास्तव में महामूर्ख अपुत्र

पाठान्तर : १. भोत २. बड़ी ३. तूलै ४. उपगार ५. आणै ६. हाँकै
७. रहै

है। ऐसे मूर्ख पुत्रों को स्त्रियाँ—रांड [असम्मानजनक संबोधन] पैदा ही क्यों करती है ? ऐसों को जन्म देना ही व्यर्थ है।)

केई[1] जौहरी-कविराज, नग-माणस परखै नहीं।
काँच क्रिपणाँ[2] बेकाज, रुलिया सेवै, राजिया ॥४१॥

(कई जौहरी रूपी कविराजा रत्न रूपी मनुष्य की परीक्षा नहीं कर पाते और व्यर्थ ही काँचरूपी कंजूस की निष्फल सेवा में लगे रहते हैं और रुलते-डुलते भ्रमण करते रहते हैं।)

कँई[3] नर बेकार, बड कहतां-करतां वलै।
राखै नहीं लगार, राम तणो डर, राजिया ॥४२॥

(कुछ लोग ऐसे हलके निकम्मे, रद्दी और बेकार होते हैं जो दूसरों की बड़ाई करते कहते हुए सुनकर जल-बल जाते हैं। वे भगवान का ज़रा-सा भी डर नहीं मानते।)

क्यूं[4] न भजै करतार, सांचै मन करणी सहित।
सारो ही संसार, रचना झूठी, राजिया ॥४३॥

(मनुष्य सच्चे मन और कर्म से परमात्मा (करतार कर्ता) का भजन क्यों नहीं करता ? वस्तुतः वही तो एक मात्र सत्य है। बाकी सम्पूर्ण संसार और भगवान की सारी रचनाएँ तो सर्वथा झूठी हैं।)

खग-झड वाग्या खेत, जिणपर पग पाछो दियै।
रजपूती में रेत, राल. नचीतो, राजिया ॥४४॥

(रण भूमि में तलवारों के भिड़ने की आवाज होने पर जिस वीर ने अपने पैरों को पीछे की ओर रखा, उसके वीरत्व (राजपूती) में निश्चित होकर धूल डालो, भी उसे धिक्कारो।)

खड़[5] धूकड़[6] खर[7] खाय, हाथल बल मोताहलां।
जे[8] नाहर मर जाय, रज तृण[9] भखै न, राजिया ॥४५॥

(गधा घास-फूस-कूडा-कर्कट खाता है परन्तु सिंह अपने पंजे के बल पर हाथी के मस्तक से मिलनेवाले गजमोती खाता है। यदि सिंह को भूखा मरना पड़े तो वह धूल से भरी हुई घास नहीं खाता।)

खल-गुड़[10] अणकूतांह, एक भाव कर आदरै।
ते नगरी हूतांह, रोही आछी, राजिया ॥४६॥

(जिस नगरी में खली और गुड़ के गुण-दोषों की जाँच किये बिना ही उनको

पाठान्तर : १. के २. क्रपण ३. के इक ४. क्यों न भज्यो करतार ५. खल ६. धूकल ७. कर ८. जो ९. तृण १०. गुल

एक भाव से निरखा-परखा जाता है और दोनों एक ही भाव बिकते हैं, उस नगरी की अपेक्षा निर्जन जंगल ही अच्छा है। अर्थात् जहाँ गुणी अवगुणी का एक-सा आदर किया जाता है, ऐसी अंधेर नगरी की अपेक्षा रहने के लिए सूना जंगल ही अच्छा हैं।)

खाग तणै बल खाय, सिर साटै रो सूरमा।
जिण रो[1] हक रह जाय, राम निभावै, राजिया ॥४७॥

(जो शूरवीर अपनी तलवार की ताक़त से अपने सिर के बदले में मालिक का अन्न खाता है। उस शूरवीर का हक़ संसार में रह जाता हैं। उसको भगवान सदा निभाते हैं।)

खीच मुफत रो खाय, करड़ावण डूंकर करे[2]।
लपर घणो लपराय, रांड उचकसी, राजिया ॥४८॥

(बातूनी आदमी लपर-मुफ़्त का भोजन [खिचड़ा] करता है और ऊपर से अकड़ तथा नखरे करता है। वह लपर अत्यधिक बातें बनाकर कभी किसी स्त्री [रांड] को उड़ाकर न ले जाये। ऐसों से सावधान रहना चाहिए।)

खूंद गधेड़ो खाय, पैलां री बाड़ी पड़ै[3]।
आ अण जुगती आय, रड़कै चित्त में, राजिया ॥४९॥

(गधा दूसरों की बाड़ी-वाटिका में घुसकर उसे खूंद-खूंद कर खा रहा है, रौंद रहा है। यह एक अनुचित कार्य है जो हृदय में खटकता-चुभता [रड़कै] है। सारांश में किसी के भी कोई हानि नहीं होनी चाहिए।)

खोटो दाणो खाय, फिटक धजा उड़ती फिरै।
लैरां रांड लगाय, रिख बण वैठ्या, राजिया ॥५०॥

(यहाँ ऐसे ढोंगी लोग हैं जो पाप या बुराई से भरा हुआ भोजन करते हैं, जिनके आडम्बर की ध्वजा उड़ती रहती है और जिन्होंने अपने साथ स्त्री [रांड] को लगा रखा है, जो स्त्री को साथ रखते है, वे महात्मा बने हुए बैठे हैं।)

गह-भरियो गजराज, मद[4] छकियो चालै मतै।
कुकरिया बे-काज, रुगड[5] भुसै किम[6], राजिया ॥५१॥

(गर्व से भरा हुआ गंभीर स्वभाववाला और मद से छका हुआ हाथी अपनी मन मस्ती में चलता है। ये नीच कुत्ते व्यर्थ ही उसके पीछे क्यों भौंकते हैं?)

गुण-औगुण जिण गांव, सुणै न कोई सांभळै।
मच्छ[7] गळागळ मांय, रहणो मुसकल, राजिया ॥५२॥

पाठान्तर : १. ज्यांरो २. घणी ३. परै ४. मह पर वह आपह मतै
५. रोय भुसै ६. क्यों ७. उण नगरी बिच नाँव

(जिस गाँव में गुण-अवगुण को सुनने-समझनेवाला कोई नहीं होता, ऐसी मच्छ गलागल [मत्स्य न्याय] में वहाँ रहना कठिन है। ऐसी अंधेर नगरी में रहना कठिन है।)

गुण सूं तजै न गांस, नीच हुवै डर सूं नरम।
मेल् लहै खर-मांस, राख पड़ै जद, राजिया ॥५३॥

(दुष्ट आदमी किसी के गुणों से सद्व्यवहार से, समझाने से प्रभावित होकर अपनी नीचता [नाराजी] नहीं छोड़ता। वह तो केवल डर से ही नम्र होता है। जैसे गधे का मांस राख पड़ने पर ही [मिलने पर ही] पकता है।)

गुणी सपत सुर गाय, कियो किसब मूरख कनै।
जाणै रूनो जाय, रिंद[1] रोही में, राजिया ॥५४॥

(जब संगीत विद्या के गुणी कलाकार ने मूर्ख के सामने सप्त स्वर में गाकर अपनी कला [गुण] का प्रदर्शन किया तो ऐसा लगा मानो वह घोर निर्जन जंगल में जाकर रोया हो, जहाँ सुननेवाला कोई नहीं होता। मूर्ख के सम्मुख अपने गुणों का प्रदर्शन करना अरण्यरोदन के समान व्यर्थ है।)

गैला-गंडक गुलाम, पुचकार्‌या[2] बांथां पड़ै।
कूट्‌या देसी[3] काम, रीस न कीजै, राजिया ॥५५॥

(पागल, कुत्ते और गुलाम पुचकारने पर भी लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं, सिर पर चढ़ते हैं। वे तो कूटने-मारने से ही काम देते हैं। इसमें क्रोध करने या बुरा मानने की कोई बात नहीं है।)

गोली गोरै गात, पर-धर दीखै[4] पदमणी।
पतलज साथै[5] बात, रत्ती न कीजै, राजिया ॥५६॥

(गोरे शरीरवाली गोली [दासी] पराये घर में पद्मिनी-सी दिखाई देती है परन्तु उस गिरी हुई लज्जाहीन [पतलज-पातर] से रत्ती भर, ज़रा भी बात नहीं करनी चाहिए।)

घण[6] साबल, घण घाय, नहं फूटै पाहड़ निबड़।
जड़ कोमल भिद जाय, राय पड़ै जद, राजिया ॥५७॥

(लोहे के हथौड़े और साबल [मोटी छड़] की तेज चोटों से भी कठोर पर्वत नहीं फूटता परन्तु वही पर्वत-पौधे की कोमल जड़ से भिद जाता है और तब उसी में दरार पड़ जाती है। यानी जो काम कठोरता से नहीं होता, वह नम्रता से हो जाता है।)

पाठान्तर : १. रोही में नर, राजिया २. बुचकार्‌या ३. देवै ४. दीसै ५. सागै
६. घण घण साँच वधॉय

घेर सबल[1] गजराज, केहर पल[2] गजकां करै ।
कोसठ करकां[3] काज, रिगता रैवै[4], राजिया ॥५८॥

(बलवान हाथी को घेरकर, उसको मारकर सिंह उसके मांस को आनन्द ले लेकर खाता है परन्तु गीदड़ हाथी की हड्डियों के ढाँचे के लिए ही ललचाते रहते हैं । सारांश में कुछ लोग पराक्रम से जीविकोपार्जन करते हैं और कुछ निरुद्यमी लोग उनके टुकड़ों पर ही पलते हैं ।)

घोचो लाग्यां घाव, घी गीहूं[5] भावै घणा ।
इसडा[6] तो उमराव[7], रोटयां मुहंगा[8], राजिया ॥५९॥

(जिनके लकड़ी के छोटे-से टुकड़े [घोचो] की लगने से ही घाव हो जावे तथा जिनको खूब घी और गेहूँ का पुष्ट आहार खाने को चाहिए। ऐसे उमरावों को मात्र रोटियों के बदले में रखना भी महँगा ही है क्योंकि वे युद्ध के काम के नहीं होते हैं ।)

चालै जठै चलंत, अण-चलियां आवै नहीं ।
दुनिया में दरसंत, रीस सुलोचन, राजिया ॥६०॥

(क्रोध का जहाँ वश चलता है, वहीं वह आता है और जहाँ वश नहीं चलता, वहाँ नहीं आता । यह व्यवहार संसार में सर्वत्र देखा जाता है। क्रोध भरी आँखें बड़ी समझदार होती हैं ।)

चावल जितरी चोट, कोई अति सावल कहै ।
खोटै मन[9] रो खोट, रहै चिमकतो, राजिया ॥६१॥

(कोई व्यक्ति चावल के समान छोटी-सी तीखी बात की चोट मारता है, कोई एकदम सही उचित बात कहता है परन्तु उसको सुनकर मलिन मन में भरा खोट भड़क उठता है, वह भारी नाराज होता है ।)

चुगली ही सूं चून, और न गुण इण वासतै ।
खोस लिया बेखून, रिगल उठाता,[10] राजिया ॥६२॥

(चुगली से ही जिनकी आजीविका [चून-आटा] चलती है, उनको इसके लिए [आजीविका] और गुणों की आवश्यकता नहीं पड़ती । ऐसे लोग हंसी-हँसी में [रिगल] ही निरपराध [बेखून] व्यक्तियों को अपने चुगली के जाल में फँसा [खोस लिया] कर उनकी जीविका छीन लेते हैं । राजाओं और सरदारों को तो चुगलखोर घेरे ही रहते थे ।)

पाठान्तर : १ सबल २. पल ३. कर किम ४. ही रै ५. गेहूँ ६. अहड़ा ७. अमराव ८. मूघा ९. खोटा दिल १०. उठावै

चोर चुगल वाचाल, आं[1] री मानीजै नहीं ।
संपड़ावै वसकाल, रीती नाड्यां, राजिया ।।६३।।

(चोर, चुगल और लबार—इन सबकी बातें नहीं माननी चाहिए। ये ऐसी गप्पे मारने वाले होते हैं कि सूखी तलाई में भी स्नान करवा देते हैं। निराधार को साधार बनाने में सफल हो जाते हैं ।)

जका जठी किम जाय, आशा ज्यां हूंताह नां ।
ऐ म्रिग सिर दे आय, रीभरा जाणै, राजिया ।।६४।।

(जिसको जहाँ से कोई आशा नहीं हो, वह वहाँ कैसे जाये ? हरिण प्रसन्न होना जानते हैं । इसलिए गाने वाले के पास आकर अपना सिर भी दे देते हैं ।)

जगत करै जिमणार, स्वारथ रै ऊपर सको ।
पुनरो फल् अणापार, रोटी नहं दें, राजिया ।।६५।।

(सारा संसार अपने स्वार्थ में बँधकर सबको भोज देता है अर्थात् सबकी जीमणवार करता है परन्तु पुण्यार्थ कोई एक रोटी भी किसी को नहीं देता जबकि पुण्य का फल अपार बताया गया है ।)

जग में दीठो जोय, हेक प्रगट व्यवहार[2] म्हे ।
काम न मोटो कोय, रोटी मोटी, राजिया ।।६६।।

(हमने [मैंने] संसार में भली प्रकार घूम-फिरकर देख लिया है और लौकिक प्रकट व्यवहार में भी यही एक बात सामने आयी है कि यहाँ कोई भी काम मोटा [बड़ा] नहीं है, मूल रूप में रोटी [भोजन, पेट, भूख] बड़ी चीज है ।)

जण जण, रो मुख जोय, नहचै दुख कहणो नहीं ।
काढ न दे वित कोय, रीरायां सूं, राजिया ।।६७।।

(अपना दुख निश्चित रूप से जन-जन [हर एक आदमी] के मुँह की ओर झाँक कर नहीं कहना चाहिए क्योंकि दीनतापूर्वक गिड़गिड़ाकर माँगने से कोई भी धन निकालकर नहीं देता ।)

जात-सुभाव न जाय, राघड़ कद[3] बोदो हुवै ।
आरण वाग्यां आय, रीठ बजावै[4], राजिया ।।६८।।

(वीर राजपूत दीन अवस्था में होने पर भी कायर कब होता है भला ? उसका जाति-स्वभाव जाता नहीं है । युद्ध के नगाड़े बजने पर वह युद्ध-भूमि में जाकर तलवार बजाता है । उसकी दीन-दशा उसके जाति-स्वभाव को नहीं मिटा सकती ।)

पाठान्तर : १. यांरी २. विवहार ३. के ४. बजाड़ै

जायो तूं जिणा देस, जल ऊंडा थोथा थला।

भंवरपणा रो भेस, रल्यो कठा सूं, राजिया ।।६९।।

(जिस देश में तेरा जन्म हुआ है, वहाँ कुओं का पानी बहुत नीचा-गहरा है तथा वहाँ की धरती एकदम सूखी [थोथा-थला] है। फिर भी तेरे को छैलापन [भ्रमर का-सा स्वभाव] का स्वभाव कहाँ से मिला अर्थात् रसहीन धरती पर तूं सरस हृदयवाला कहाँ से आया ?)

जिण बिन रह्यो न जाय, एक घड़ी अलगो हुया।

दोस करै बिन दाय, रीस[1] न कीजै, राजिया ।।७०।।

(एक घड़ी भर के लिए अलग होने पर जिसके बिना रहना कठिन हो जावे, वह यदि कभी इच्छा के विरुद्ध [बिनदाय] दोष भी कर बैठे तो भी उस पर क्रोध नहीं करना चाहिए। यह उत्कट प्रेम का लक्षण है।)

जिण मारग ओ जात, भूंडो[2] हो अथवा भलो[3]।

बिसनी सूं सौ बात, रह-यों न जावै, राजिया ।।७१।।

(जिस मार्ग पर व्यसनी जाता है, चाहे वह बुरा हो, चाहे भला, वह व्यसनी उसे छोड़ नहीं सकता। उससे उस पर चले बिना निश्चित रूप से रहा नहीं जाता। यह सौ बातों की एक बात है, बिल्कुल सही है।)

जिण[4] रो अन-जल खाय, खल तिण री[5] खोटी करै।

जड़ा मूल सूं जाय, राम न राखै, राजिया ।।७२।।

(दुष्ट लोग जिसका अन्न-जल खाते हैं, उसी को हानि पहुँचाते हैं। अन्त में ऐसे दुष्ट लोग समूल नष्ट हो जाते हैं। भगवान भी ऐसे कृतघ्न लोगों की रक्षा नहीं करता।)

जिण[6] ही सूं जुड़ियोह, मन[7] गाढो कर माढवा।

पारस खुल पड़ियोह, रोयां मिलै न, राजिया ।।७३।।

(तेरा मन मजबूती के साथ गाढ़ा होकर जिससे गहरी मित्रता में जुड़ गया है, हे मनुष्य ! उसके साथ मित्रता का निर्वाह दृढ़तापूर्वक करो। यदि उससे मित्रता भंग हो गई तो मानो गाँठ से बँधा हुआ पारस ही खुलकर गिर पड़ा फिर वह रोने से नहीं मिलेगा। अर्थात् सच्चा मित्र खो गया तो रोने से नहीं मिलेगा।)

ठाकर ठाला ठोठ, ठुकराणी गिरवर जिसी।

करै विभै रा कोट, रात्यूं सूत्या, राजिया ।।७४।।

(ठाकुर ठलुवा और निपट मूर्ख है तथा ठकुरानी [ठाकुर की पत्नी] पहाड़ के

पाठान्तर : १. रोस २. भूंडी ३. भली ४. खोदा ५ सूं ६. जण ७. मद

समान मोटी है। वे दोनों रात-रात भर सोते हुए वैभव के बड़े-बड़े क़िले बनाते रहते हैं, धन के स्वप्न देखते रहते हैं, हवाई क़िले बनाया करते हैं क्योंकि उनको जीवन में भोग-विलास के अतिरिक्त और कोई काम नहीं।

डूंगर बलती[1] लाय, जोवै सारो ही जगत।
पण[2] बलती निज पाय, रती न दीखै[3], राजिया ॥७५॥

(डूंगर पर जलती हुई आग को सम्पूर्ण संसार देख लेता है परन्तु अपने पैरों के पास जलती हुई अग्नि किसी को ज़रा भी दिखाई नहीं देती। अर्थात् दूसरों के छोटे-छोटे दोष भी दिख जाते हैं परन्तु अपने बड़े दोष भी दृष्टिगत नहीं होते।)

तज सारी मन घात, इक-तारी राखै अधिक[4]।
बां मिनखां री बात, राम निभावै, राजिया ॥७६॥

(जो मनुष्य अपने मन के सब छल-कपटों को त्याग कर निरन्तर समभाव [इक तारी, समानता की स्थिति] से अधिक रहते हैं, उनकी सब बातों को भगवान निभाता है, पूर्ण करता है। अर्थात् सत्यनिष्ठ व्यक्तियों की बात कभी मिथ्या नहीं होती है।)

तुरत बिगाड़ै ताहं, पड़ गुण स्वाद सरूप नै।
मितराई पय मांह, रिगल खटाई, राजिया ॥७७॥

(मित्रता रूपी दूध में कभी कभी मज़ाक रूपी खटाई पड़कर उसके स्वरूप स्वाद और गुण को तत्काल बिगाड़ देती है। अर्थात् हँसी-मज़ाक भी सावधानी पूर्वक करनी चाहिए।)

दातारां इक दाय, आथ नहीं जो आपरै।
काढै व्याज कराय, रीझ परो दे, राजिया ॥७८॥

(दानियों का यह एक स्वभाव होता है कि यदि उनके पास में धन नहीं हो तो भी ब्याज पर रकम लेकर भी गुणवन्त को प्रसन्नता से भेंट अवश्य देंगे। दानी लोग उदार होते हैं। वे गुणी जनों का आदर करना जानते हैं।)

दाम न होय उदास, मतलब गुण गाहक मिनख।
ओखद रो कड़वास, रोगी गिणै न, राजिया ॥७९॥

(अपने कार्य की सिद्धि चाहनेवाला और गुण ग्राहक व्यक्ति अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कष्ट झेलते हुए तनिक भी उदास नहीं होता अर्थात् किसी बात को कड़वी नहीं मानता जैसे रोगी स्वस्थ होने के लिए दवा की कड़वाहट की ज़रा भी परवाह नहीं करता।)

पाठान्तर : १. जलती २. प्राजलती ३. सूझै ४. इधक

दुसट सहज सम दाय, गुण छोड़े औगुण गहै ।
जोख चढ़ी कुच जाय, रातौ पीवै, राजिया ॥८०॥

(दुष्टों का यह सहज एवं सामान्य स्वभाव होता है कि वे गुणों को छोड़कर अवगुणों को ग्रहण करते हैं जैसे जोंक [एक कीड़ा] यदि कुचों [स्तनों] पर जा चढ़ती है तो वह दूध की बजाए रक्त ही पीती है ।)

दूध नीर मिल दोय, एक जिसी आकृत हुवै ।
करै र न्यारा कोय, राजहंस बिन, राजिया ॥८१॥

(दूध और पानी दोनों मिलकर एक जैसी आकृति के हो जाते हैं । गुणी पारखी राजहंस के बिना दूसरा कोई उनको अलग-अलग नहीं कर सकता । अर्थात् मर्म को जाननेवाला ही तत्त्व की पहचान कर सकता है ।)

देखै नहीं कदास, नहचै[1] कर कुनफो-नफो ।
रोला रो इखलास[2], रोल मचावै, राजिया ॥८२॥

(जो मनुष्य अज्ञानवश दुष्टों, निकम्मों और मूर्खों से प्रेम करता है । वह उत्पातकारी और गड़बड़ी पैदा करनेवाला हो जाता है । वह निश्चय ही कभी भी अपने हानि-लाभ को नहीं देखता ।)

देसोतां री खाट, बैठे आय बराबरी ।
नाई किसब निराट, रच्छाणी सूं, राजिया ॥८३॥

(नाई का कार्य भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है । वह अपने औजारों [रछानी] के कारण हजामत करते समय भूस्वामियों, सम्मानित लोगों की खाट पर बराबर आकर बैठता है । मूल भाव है कि नाई छोटा समझा जाता है परन्तु रछानी उसको बड़ा बना देती है । जो व्यक्ति औज़ारों का उपयोग करना जानता है, उसका सम्मान होता है ।)

धान नहीं ज्यां धूल, जीमण बखत जिमाड़ियै ।
मायं अंस नहिं मूल, रजपूती रो, राजिया ॥८४॥

(जिसके मन में वीरता [रजपूती] का जरा भी अंश मूलरूप में नहीं है उसको भोजन के समय जो अन्न खिलाया जाता है, वह मिट्टी के समान हो जाता है । वह भोजन धूल के बराबर है, निरर्थक है ।)

नभचर विहग निरास, बिन हिम्मत लाखां वहै ।
बाज तपत[3] कर[4] वास, रजपूती सूं, राजिया ॥८५॥

(आकाश में निराश और हिम्मत हारे हुए लाखों पक्षी उड़ते रहते हैं परन्तु बाज [श्येन] पक्षी अपना प्रताप प्रकट करके वीरता और शौर्य के बलपर [रजपूती

पाठान्तर : १. निहचै २. इकलास ३. त्रपत ४. करै

सूं] निवास करता है। साहस का सर्वत्र सम्मान होता है।)

नरां नखत परवाण, ज्यां ऊभां संके जगत।
भोजन तप्यो न भाण, रावण मरतां, राजिया ॥८६॥

(मनुष्य की उन्नति का आधार उसके नक्षत्र है। जब किसी के नक्षत्र खड़े अर्थात् अनुकूल होते हैं तो उससे सारा संसार शंकित रहता है लेकिन नक्षत्र के प्रतिकूल होते ही सब बिगड़ जाता है। देखो, रावण के मरने पर सूर्य ने उसकी रसोई में भोजन बनाना बन्द कर दिया।)

नहचै[1] होय निसंक, चित कीजै नहं चल.-विचल.।
ऐ विधना रा अंक, राई घटै न, राजिया ॥८७॥

(ये भाग्य लेख [विधाता के अंक] ज़रा भी कम नहीं होंगे। इसलिए निश्चित रूप से निःशंक होकर रहो, चित्त को विचलित [चल. विचल.] मत करो।)

नां नारी नां नाह, अधविचला दीखै[2] अपत।
कारज सरै न काह, रांडोला सूं, राजिया ॥८८॥

(कुछ पुरुष ऐसे होते हैं जो न तो स्त्री होते हैं और न पुरुष ही होते हैं बल्कि लज्जाहीन अधबिचले दिखाई पड़ते हैं। ऐसे स्त्रैण पुरुषों [रांडोला या नामर्द] से कभी कोई काम बननेवाला नहीं।)

नान्हा[3] मिनख नजीक, उमरावां आदर नहीं।
ठाकर उण[4] नै ठीक रण में पड़सी, राजिया ॥८९॥

(जिस ठाकुर के निकट सदा ओछे आदमी रहते हैं तथा जहाँ सरदारों—शूरवीर का आदर नहीं होता, उस ठाकुर को युद्ध-भूमि में ही उस समय असली हालत का पता चलेगा, जब ओछे या कायर लोग युद्ध का नाम सुनकर उसे छोड़कर भाग खड़े होंगे।)

नारी दास अनाथ, पण माथै चाढ्यां पछै।
हिय ऊपरलो हाथ, राल्.यों जाय न, राजिया ॥९०॥

(नारी और सेवक ये दोनों असहाय, अनाथ एवं विनम्र होते हैं। परन्तु इनको सिर चढ़ा लेने पर वे नींद में छाती पर आये हुए हाथ के समान हो जाते हैं, जसको जागे बिना सहज ही में हटाया नहीं जा सकता। नींद में छाती पर हाथ आने से व्यक्ति उसके भार से दब-सा जाता है और बुरे स्वप्न आने लगते हैं।)

पाठान्तर : १. नहचै रहो निसंक, चित मत कीजै चल. विचल. २. दीसै
३. गोला घणा नजीक ४. जिण

नारी नहँ[1] निंदात, चाहीजै भेदग चतुर ।
बांता ही में बात, रीझ-खीज में, राजिया ।।६१।।

(नारी की निन्दा मत करो । वह प्रशंसा के योग्य है । उसके रहस्य को समझने-वाला व्यक्ति चतुर होना चाहिए । जैसे प्रसन्नता में और नाराजगी की हर स्थिति की एक-एक बात में अनेक बातें भरी रहती हैं । उन सबको समझना कठिन होता है, उसी प्रकार नारी को समझना भी कठिन है ।)

पटियालो[2], लाहौर, जींद भरतपुर जोयलो ।
जाटां में ही जोर, रिजक प्रमाणै, राजिया ।।६२।।

(पटियाला, लाहौर, जींद और भरतपुर—इन जाट रियासतों को देख लो । अपने कार्य [रिजक, आजीविका] के अनुसार इनमें भी उतना ही जोर है—ये रियासतें पहले बहुत शक्तिशाली थीं ।)

पढणो वेद पुराण, सोहरो[3] इण संसार में ।
बातां तणो विनाण, रहस दुहेलो, राजिया ।।६३।।

(इस संसार में वेद-पुराण अर्थात् शास्त्रों का अध्ययन करना उतना कठिन नही है, जितना कि 'बातों का विज्ञान' अर्थात् लोक-व्यवहार की योग्यता प्राप्त करना कठिन है । इस विज्ञान का रहस्य समझना दुष्कर है ।)

पय[4] मीठो कर पाक, जे इमरत सींचीजिये ।
उर कड़वाई आक, रंच न मूकै, राजिया ।।६४।।

(आक [अर्क] के पौधे को यदि दूध से मीठा पाक बनाकर अथवा अमृत से भी सींचा जावे तो भी वह अपने मनके भीतर के कड़वेपन को जरा भी नहीं छोड़ता अर्थात् नीच प्रकृति पर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं होता ।)

पल-पल में कर प्यार, पल-पल में पलटै परा ।
ऐ मतलब रा यार, रहजे[5] अलगो, राजिया ।।६५।।

(जो एक क्षण में प्यार करते हैं तथा दूसरी क्षण में ही बदल जाते हैं, ऐसे लोग स्वार्थी मित्र होते हैं । उनसे दूर ही रहना चाहिए ।)

पल[6]-पल में कर प्यार, पल[7]-पल में पलटै परा ।
लानत दे ज्यां लार, रजी उड़ावो, राजिया ।।६६।।

(जो एक क्षण में प्यार करते हैं और दूसरे ही क्षण बदल जाते हैं, ऐसे लोगों को खूब धिक्कारना चाहिए और उनके पीछे धूल उड़ानी चाहिए ।)

पाठान्तर : १. नहिं २. पटियालो नाभोर ३. सोरो ४. पय कर मीठा पाकर
५. रहै न छाना ६. पल, मांही ७. पल, मांही

पहली कियां उपाव, दव दुसमण आमय दटै ।
प्रचंड हुआ वस बाव, रोभा घालै, राजिया ।।९७।।

(प्रारम्भ में ही ठोस उपाय करने पर दावाग्नि, दुश्मन और रोग दबाये जा सकते हैं परन्तु वायु से प्रचंड होने पर वे अत्यधिक पीड़ा देते हैं, फिर उनको दबाना कठिन हो जाता है।)

पहली हुवै न पाव, क्रोड मणां जिण में करै ।
सुरतरू[1] तणो सुभाव[2], रंक न जाणै, राजिया ।।९८।।

(जिसके पास पहले पाव भर भी नहीं होता, उस गरीब के हवाले कल्पवृक्ष [दानी] करोड़ों मन कर देता है। उसके [कल्पवृक्ष के] इस स्वभाव को निर्धन (कंजूस) नहीं जान सकता।)

पाटा पीड़ उपाव, तन लाग्यां तरवारियां ।
भरै[3] जीभ रा घाव, रती न ओखद, राजिया ।।९९।।

(शरीर में तलवार के घाव होने पर मरहम-पट्टियों आदि से उनकी पीड़ा को दूर करने के उपाय हो सकते हैं परन्तु वचन-बाण के घावों [जीभ के घावों) को भरने की दवा रत्ती भर भी कहीं नहीं है।)

पालण भाण पुडाखि[4] केइ मूरख उद्यम करै ।
उलटी फूटै आँखि, रेत उछाल्या, राजिया ।।१००।।

(कुछ मूर्ख व्यक्ति सूर्य को आवरण में रोकने के लिए चेष्टा करते हैं परन्तु इस प्रकार रेत उछालने से तो उलटे उन्हीं की आँखें फूटती हैं।)

पाल तणो परचार, कीधो आगम काम रो ।
बरसंतां घणवार, रूकै[5] न पाणी, राजिया ।।१०१।।

(वर्षा के अत्यधिक पानी को रोकने के लिए 'पाल'(बंध) का प्रबन्ध पहले करना ही लाभदायक है क्योंकि बादलों के बरसते समय यदि पाल बाँधने का प्रबन्ध किया गया तो पानी कभी भी नहीं रुकेगा। वह परिश्रम व्यर्थ जावेगा, कहावत है, 'पाणी पैली पाल बाँधणो'—पानी के पहले पाल बाँधना।)

पिंड लच्छण[6] पहचांण, प्रीत-हेत कीजै पछै ।
जगत कहै सो जाण, रेखा-पाहण, राजिया ।।१०२।।

(पहले किसी के कुल [पिंड] के लक्षणों की तथा उस व्यक्ति (पिंड-शरीर) के आचरणों की जाँच-पड़ताल करके फिर उससे प्रेम-संबंध और मित्रता करनी

पाठान्तर : १, सुरतर २. सभाव ३. वहै ४. पलाखि ५. रोक्या रुकै न राजिया ६. कुलध

चाहिए । इस संबंध में संसार जो कुछ कहता है, उसे पत्थर की लकीर—पक्की बात—समझो, जानो ।)

पुन्न गया पर-वार, सजण साथ छूट्या जदै ।
दुरजनजण[1] रै द्वार, रोता फिरवै, राजिया ।।१०३।।

(जब किसी के पुण्य नष्ट हो जाते हैं तब सज्जन उससे अलग हो जाते हैं, दूर चले जाते हैं तथा उनका साथ छूट जाता है । अब उसे दुर्जनों के द्वार-द्वार पर रोते फिरना पड़ता है ।)

प्रभुता मेरु-प्रमाण, आप रहै रज कण इसा ।
जिकै पुरस[2] धन जाण, रवि-मंडल विच, राजिया ।।१०४।।

(जिन पुरुषों का प्रभुत्व सुमेरु पर्वत के समान हो और फिर भी वे स्वयं रज-कण के समान तुच्छ या विनम्र भाव से रहते हों । ऐसे पुरुषों को सूर्य-मंडल में धन्य समझो । भाव यह है कि प्रभुता पाकर भी जो मनुष्य घमंड नहीं करता वही धन्य है ।)

बंध बध्या[3] छुडवाय, कारज मन[4] चिन्त्याकरै ।
कहो, चीज है काय, रूपिया सरखी,[5] राजिया ।।१०५।।

(रुपये के समान संसार में भला और कौन सी ऐसी चीज है जो बंधकों को बंधन से मुक्त करवाती है और मन में विचारे हुए कार्यों को पूरा कराती है । अर्थात् रुपया ही सर्वसिद्धि दाता है ।)

बाँकापणो[6] विसाल, वस कोसू[7] धण वेखजै ।
बीज तणो ससि बाल, रस परवाणौ, राजिया ।।१०६।।

(बाँकापन बहुत बड़ा गुण है । वह किसी के भी वश में होता दिखलाई नहीं देता । द्वितीया का चन्द्रमा होता तो छोटा ही है परन्तु वह गुणों का पक्का प्रमाण है । दूज के बालचन्द्र को ग्रहण नहीं लगता क्योंकि वह बाँका होता है ।)

बिन मतलब बिन भेद, केई[8] पटक्या रामका ।
खोटी करै[9] निखैद, रामत करता, राजिया ।।१०७।।

(विना प्रयोजन तथा भले-बुरे के भेद के भगवान के द्वारा पृथ्वी पर पटके हुए कई ऐसे दुष्ट हैं जो खेल-खेल में ही अनिष्ट एवं निषिद्ध कार्य करते रहते हैं ।)

भली-बुरी रो भीत, नहं आणै मन में निखद ।)
निलजी सदा नचीत, रहै सयाणा, राजिया ।।१०८।।

पाठान्तर : १. जण री लार, रोक्या रहै न राजिया २. पुरुष ३. वांध्या
४. मनचाता ५. सिरसी ६. बाँकापणो ७. की सूं ८. केइयक
९. कहै

(दुष्ट और निर्लज्ज आदमी के मन में भली तथा बुरी बात का भय कभी नहीं आता, वह सदा निश्चिंत और अपने आपको समझदार मानकर रहता है ।)

भावै नहीं ज भात, विजन[1] लागै विडावणा ।
रीरावै दिन-रात, रोट्यां खातर,[2] राजिया ।।१०९।।

(जिनको कभी भात-चावल भी अच्छे नहीं लगते थे और अनेक प्रकार के व्यंजन [पकवान] भी रुचि के अनुकूल नहीं लगते थे। ऐसे ही व्यक्ति आज दिनों के फेर से रोटियों के लिए रात-दिन गिड़गिड़ाते फिरते हैं ।)

भ्याड़ जोख झख भेक, वारिज कै भैळा बसै ।
इसकी भँवरों एक, रस की जाणै, राजिया ।।११०।।

(भ्याड़ (बड़ा मेढ़क) जोंक, मछली और भेक (साधारण मेढ़क) ये सब पानी में कमल के साथ ही रहते हैं परन्तु कमल के रस के महत्त्व को जाननेवाला तो एकमात्र प्रेमी भँवरा ही है। भाव यह है कि पदार्थ के गुण को उसका पारखी ही जानता है और उसके रस को उसका रसज्ञ ही जानता है। केवल साथ रहने से क्या होता है ?)

भिड़ियो घर भाराथ, गाढा[3] कर राखै गढां ।
ज्यूं काळो सिर जात, रांक न छावै[4], राजिया ।।१११।।

(सच्चा शूरवीर रण क्षेत्र में शत्रुओं से जा भिड़ता है और दुर्ग का अवरोध होने पर दृढ़ता से उसकी रक्षा करता है, वह कभी दीनता नहीं दिखाता। जैसे यदि काले नाग का सिर जाने की स्थिति हो जाती है तो भी वह दीनता धारण नहीं करता है ।)

मतलब[5] री मानवार, चुपकै ल्यावै चूरमो ।
बिन मतलब री[6] बार, राब न घालै[7] राजिया ।।११२।।

(सभी स्वार्थ के कारण जब किसी की मनुहार स्वागत सत्कार करते हैं तो गुपचुप में चुपचाप चूरमा (मधुर भोजन) लाकर उसे खिलाते हैं परन्तु जब मतलब नहीं होता है तो कोई राबड़ी(राब)भी नहीं खिलाता। अर्थात् साधारण भोजन भी नहीं करवाता । संसार में स्वार्थ का ही सम्मान है ।)

मद विद्या धनमान, ओछा[8] सहु[9] चालै अवट ।
आधण रै उनमान, रहै जै[10] विरळा, राजिया ।।११३।।

(विद्या, धन और सम्मान के घमंड में सभी ओछे व्यक्ति मार्ग छोड़कर चलने लगते हैं अर्थात् अकड़कर चलते हैं। इन सबको धारण करनेवाले विरले पुरुष ही

पाठान्तर : १. लागै विजन २. कारण ३. गड्डी ४. छाई ५. मुनलब ६. मनवार ७. पावै ८. से ९. उकलै १०. क

मर्यादा के भीतर रह पाते हैं अर्थात् घमण्ड नहीं करते।)

मन सूं झगड़े मोर, परला[1] सूं झगड़ै पछै।
त्यांरा घटै न तौर, राज-कचेड़ी, राजिया ।।११४।।

(जो मनुष्य पहले अपने मन से झगड़ लेते हैं अर्थात् विषय को पूर्णतया समझकर अपना निर्णय कर लेते हैं और बाद में दूसरों के साथ (विरोधियों से) झगड़ा छेड़ते हैं अर्थात् अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं, उनका तेज न्यायालय में भी कभी नहीं घटता। उनकी हार कभी नहीं होती।)

मलयागिर मंझार, हर कोई तरु चंदन हुवै।
संगत लियै[2] सुधार, रूखा नै[3] ही, राजिया ।।११५।।

(मलय पर्वत पर चंदन के साथ रहकर हर कोई वृक्ष ही चंदन बन जाता है। देखो, सत्संगति तो पेड़ों को भी सुधार देती है। मनुष्यों की तो बात ही क्या है ?)

मानै कर निज मीच, पर-सम्पत देखै अपत।
निपट दुखी ह्वै नीच, रीसां बल-बल, राजिया ।।११६।।

(दुष्ट व्यक्ति दूसरे की सम्पत्ति को देखकर क्रोध में जल-जल कर (बारम्बार जलकर) अत्यधिक दुखी होता है तथा अपने को लज्जाहीन समझने लगता है और उसको (परसम्पत्ति) अपनी मृत्यु ही मानने लगता है।)

मिणधर[4] विख अणमाव, मोटा नहं धारै मगज।
बीछू पूंछ बणाव, राखै ऊपर[5], राजिया ।।११७।।

(मणिधारी सर्पों के पास अत्यधिक जहर होता है परन्तु वे बड़े (मोटा महान) हैं। इस कारण वे उसे मस्तक पर धारण नहीं करते, उसका घमण्ड नहीं करते। दूसरी ओर ओछा बिच्छू थोड़ी-सी जहरवाली पूँछ को अकड़ के साथ सिर पर ऊँची किये रहता है। ओछा अधिक अकड़ता है।

मिलियाँ अति[6] मनवार, बीछड़ियां भाखै बुरी।
लानत दे ज्यां लार, रजी उड़ावो, राजिया ।।११८।।

(जो लोग मिलने पर बड़ा स्वागत-सत्कार करते हैं परन्तु दूर होते ही बुराईर करते हैं, ऐसे लोगों को धिक्कारो, लानत भेजो और उनके पीछे धूल उड़ावो।)

मिले सिंघ[7] वन मांह, कण मिरगां म्रिगपत[8] कियो।
जोरावर अति जांह, रहै उरध-गत, राजिया ।।११९।।

पाठान्तर : १. पैला २. लहै ३. ही नै ४. मणधर ५. सिर पर ६. अत ७. सिंह ८. म्रगपत

(किन मृगों ने वन में मिलकर सिंह को कब मृगपति बनाया था, चुना था ? जो अत्यन्त जोरावर होता है, वह अपने आप अपनी ऊँची गति को धारण कर लेता है, श्रेष्ठ पद प्राप्त कर लेता है ।)

मुख ऊपर मिठियास[1] घट मांही खोटा घड़ै ।
इसड़ां सूं इखलास, राखीजै नह[2], राजिया ।।१२०।।

(जो मुँह पर (सामने) मीठी-मीठी बातें करते हैं, और मन में छल-कपट रचते रहते हैं, ऐसे लोगों से कभी भी प्रेम नहीं करना चाहिए ।)

मूरख-टोल[3] तमाम, घसकां रालै अत घणी ।
गतराड़ो गुण-ग्राम, रांडोलां में, राजिया ।।१२१।।

(जहाँ विद्वान् नहीं होते वहाँ मूर्खों की मंडली अत्यधिक बड़ी-बड़ी गप्पें हाँकती रहती है, जैसे स्त्रैण पुरुषों में हिजड़ा (गतराड़ो) ही गुणों से भरा-पूरा समझा जाता है ।)

मूसा नै मंजार, हित कर बैठा हेकठा ।
सह[4] जाणै संसार, रस नहं रहसी, राजिया ।।१२२।।

(चूहा और बिल्ली प्रेम करके एक बार अपने-अपने स्वार्थ में साथ-साथ एक जगह बैठे हैं परन्तु सारा संसार जानता है कि ऐसा प्रेम पक्का नहीं रहेगा । अर्थात् विरोधी प्रकृतिवाले लोग समान हित में साथ भले ही रह ले पर अन्त में बलवान निर्बल को खा जावेगा ।)

मोथा बुरी बलाय, लूण घलावै खीर में ।
कही[5] न लागै काय, राम रुखालो, राजिया ।।१२३।।

(मूर्ख आदमी एक बुरी आफ़त के समान है । वह खीर में भी नमक डलवाता है । उसपर किसी के कहने, समझाने का कोई असर नहीं होता । ऐसे मूर्खों का भगवान ही रक्षक है, मालिक है ।)

राव-रंकाधन रोर[6] सूरवीर गुणवान सठ ।
जात तणोहं नहं जोर, रीत तणो गुण, राजिया ।।१२४।।

(राजा और रंक, धनी और निर्धन, शूरवीर, गुणी और दुष्ट इन सबके होने (बनने में) में जाति का कोई प्रभाव (कारण) नहीं होता परन्तु ये सारी स्थितियाँ व्यवहार पर ही निर्भर करती हैं । यह तो व्यवहार के गुण का प्रभाव है, जाति का नही । सभी जातियों में सभी प्रकार के लोग पाये जाते हैं ।)

पाठान्तर : १. मीठास २. नंहि ३. ठोल ४. सौ ५. खींच खाण्ड सूं खाय ६. और

रिगल तणो दिन-रात, थल् करतां सायब थक्यो ।
जाय पड्यो तज जात, राजसिर्यां मुख, राजिया ॥१२५॥

(सेवक रात-दिन स्वामी के विनोद की व्यवस्था करते-करते थक गया और उसने अपने जाति-स्वभाव को भी छोड़ दिया परन्तु क्या किया जाये, वह राज्य श्री लोगों (ठाकुरों) के वश (मुख-गोद) में जा पड़ा । इसलिए अब उसको चैन नहीं मिलता । यहाँ दरबारी-सेवक की स्थिति का वर्णन है जो अपने स्वभाव को छोड़कर राजाओं के स्वभाव के अनुकूल कार्य करता है तथा उनकी कृपा पर ही निर्भर रहता है ।)

रीझ्यां देय न मौज, चूक्यां चट चेतो करै ।
उण[1] ठाकर री चोज, रती न आवै, राजिया ॥१२६॥

(जो ठाकुर रीझने पर प्रसन्नतापूर्वक भेंट नहीं देता, पुरस्कार नहीं देता परन्तु ग़लती होने पर तत्काल नाराज हो जाता है, ऐसे ठाकुर की सेवा करने के लिए रत्ती भर भी उत्साह नहीं होता ।)

रोग अगन अर राड़, जाण अलप कीजै जतन ।
बधिया पछै बिगाड़, रोक्यो रहै न, राजिया ॥१२७॥

(रोग, आग और झगड़ा ये सब जब प्रारम्भिक स्थिति में हों, थोड़े हों तभी इनको दूर करने के उपाय करने चाहिए क्यों कि बढ़ जाने पर इनके द्वारा होने-वाले बिगाड़ रोकने पर भी रुक नहीं पाते। अतः इनको बढ़ने नहीं देना चाहिए ।)

रोटी चरखो राम, इतरो मतलब आपणो[2] ।
के[3] डोकरियाँ काम, राज-कथा सूं, राजिया ॥१२८॥

(समय पर रोटी खा लेना, दिन में चर्खे पर सूत कातना और राम-राम रटना, बुढ़िया के लिए तो बस इतना-सा ही मतलब रह गया है । उसे राजनीति की कथा, चर्चा से क्या काम ? युवा वर्ग राजनीति की चर्चा करें ।)

लछमी कर हरि लार, हर नै दध दीधो जहर ।
आडम्बर अधिकार[4], राखै सारा, राजिया ॥१२९॥

(समुद्र ने भगवान विष्णु के पीछे लक्ष्मी को कर दिया और शंकर को विष सौंप दिया सभी लोग आडम्बर पर अपना अधिकार रखते हैं अर्थात् अपने आडम्बर से सबको प्रभावित करते हैं, तभी आडम्बरहीन शिव को ज़हर मिला और विष्णु को लक्ष्मी मिली ।)

पाठान्तर : १. जा २. आपरो ३. की ४. इधकार

लह पूजा गुण लार, नहँ आडम्बर सूं निपट ।
सिव वंदै संसार, राख लगाया, राजिया ॥१३०॥

(लोग गुणों से प्रभावित होकर पूजा करते हैं, आडम्बर से प्रभावित होकर बिल्कुल भी नहीं करते । जैसे सारा संसार राख लगाये रहने पर भी शिवजी की पूजा करता है ।)

लावा तीतर लार, कर[1] हाका भागै किता ।
सिंधा तणी सिकार, रमणी मुसकल, राजिया ॥१३१॥

(लावा और तीतर जैसे कमजोर पक्षियों की शिकार करने के लिए कितने ही आदमी हाका-हल्ला करके उनके पीछे भागते हैं परन्तु सिंहों का शिकार करना बड़ा कठिन काम है । उसके लिए हर कोई सामान्य आदमी तैयार नहीं होता जीवन को खतरे में डालने के लिए कोई आदमी आगे नहीं आता ।)

लूक्यां[2] करै न लोप, वन नाहर[3] भेला बसै ।
करै न सबला कोप, रंका ऊपर, राजिया ॥१३२॥

(सिंह लोमड़ियों के साथ ही बन में रहता है फिर भी वह उनका सर्वनाश नहीं कर डालता । शक्तिशाली कभी भी दीन-दुर्बलों पर क्रोध नहीं करते अर्थात् उनको कभी भी नहीं सताते ।)

लोह[4] घड़ता लुहार, सुध मन सूं 'दे-दे' भणै ।
सूमां रै उर सार, रहै घणा दिन, राजिया ॥१३३॥

(लोह घड़ते समय लुहार, शुद्ध मन से 'दे-दे' की आवाज करते हैं । दे-दे कहते हैं । यह सुनकर कंजूसों के मन में बहुत दिनों तक बड़ी पीड़ा रहती है ।)

वचन न्रिपत अविवेक, सुण छोड़े[5] स्याणा मिनख ।
अपत हुवा तरु एक, रहै न पंछी, राजिया ॥१३४॥

(राजा के विवेकहीन वचन सुनकर सयाने मनुष्य उसे उसी प्रकार छोड़कर चले जाते हैं जैसे पत्तों से रहित होने पर उस पेड़ पर एक भी पक्षी नहीं रहता ।)

वरतै हेत सवाय, कर बंधन[6] राखै कनै ।
जो सिर दीजै जाय, रीठ बजाड़ै, राजिया ॥१३५॥

(किसी के साथ यदि अधिक (सवाया) प्रेम-व्यवहार किया जावे और उसे प्रेम-बंधन में बाँधकर निकट रखा जावे तो वह समय पड़ने पर अपना सिर देने को तैयार हो जाता है, खूब तलवार बजाता है ।)

पाठान्तर : १. हर कोई हाका करै २. लूंक्याँ ३. केहर ४. लो घड़ता ज लूहार, मन सूं भई दे-दे भणै ५. छीजै ६. बंधू

वसुधा बल. व्यौपाय, जोयो सह कर-कर जुगत ।
जात सुभाव न जाय, रोक्यां-घोक्यां, राजिया ।।१३६।।

(पृथ्वी की सारी शक्ति लगा ली और सारी युक्तियों एवं उपाय कर कर के देख लिए परन्तु जाति-स्वभाव न बलपूर्वक रोकने से (रोक्यां) और न नरमी से नम करने पर (धोक्यां) अनुनय-विनय से मिट सका है ।)

विविध वणाव[1] वणाय, जुगत घणी कीधी[2] जगत ।
कीधी वसत न काय, रुपिया सरखी[3], राजिया ।।१३७।।

(विधाता ने अनेक प्रकार की रचनाएँ व नाना प्रकार की युक्तियाँ बना-बना कर संसार का निर्माण किया है, विविध वस्तुओं को बनाया है परन्तु रुपये के समान दूसरी कोई वस्तु नहीं बनाई । रुपये की रचना सर्वोपरि है ।)

विस-कसाय अन खाय, मोह पाय अलसाय मति[3] ।
जलम अकारथ[4] जाय, राम-भजन विन, राजिया ।।१३८।।

(विषय-वासना रूपी (विषतुल्य कटु मनोविकारों) अन्न खाकर तथा मोहमाया को पाकर आलस्य मत करो । राम-भजन के बिना मनुष्य जन्म व्यर्थ चला जा रहा है ।)

वीसल क्रोड़ा बीस, दीनी नांहीं एक दिन ।
सुकव्यां आंने[5] तीस, रीझ पजोयी, राजिया ।।१३९।।

(अजमेर के राजा वीसलदेव 'विग्रहराज' चौहान ने बीस करोड़ की सम्पत्ति का स्वामी होने पर भी कभी कुछ दान नहीं दिया परन्तु अजमेर के दानी राजा अर्णोराज चौहान ने सुकवियों को प्रसन्न होकर तीस करोड़ की सम्पत्ति दान में दे दी ।)

सत राख्यो साबूत, सोनगरै, जगदे, करण ।
सारी बांतां सूत, रहगी सत सूं, राजिया ।।१४०।।

(वीरमदेव सोनगरा (जिसने जालौर की रक्षा के लिए प्राणत्याग किए) जगदेव पवाँर (दानी) और दानवीर कर्ण (महाभारत) ने अपने सत्य को साबित सुरक्षित रखा तथा सत्य के कारण ही उनकी सभी बातें सही और श्रेष्ठ रहीं ।)

सबलां सम्पट-पाट, करतां नंह राखै कसर ।
निबलां एक निराट, राज तणो बल, राजिया ।।१४१।।

पाठान्तर : १. वणाय-अणाय २. रचितया २ क. सिरखी ३. मत [बुद्धि]
४. इक्यारथ [व्यर्थ] ५. अर्णोराज चौहान बीसलदेव का पुत्र था ।

(जब शक्तिशाली लोग सब कुछ चौपट करने में तथा दूसरों का अधिकार छीनते हुए कोई कोर कसर नहीं रखते तब निर्बलों को तो राजा के बल का ही एकमात्र सहारा होता है ।)

समझणहार सुजाण, नर औसर[1] चूकै नहीं ।
औसर[2] रो अबसाण,[3] रहै घणा दिन, राजिया ।।१४२।।

(समझदार और चतुर व्यक्ति मौक़े के लाभ को कभी नहीं छोड़ते, कभी नहीं चूकते क्योंकि मौका चूकने का दुःख बहुत दिनों तक कसकता रहता है । किसी की भलाई करने का अवसर आवे तो चूकना नहीं चाहिए ।)

समझ हीण सिरदार, राजी[4] चित क्यां सूं रहै ।
भूमि[5] तणा भरतार, रीझै गुण सूं, राजिया ।।१४३।।

जो भूमि को भोगनेवाले समझदार राजा होते हैं, वे तो गुणों को देखकर प्रसन्न होते हैं परन्तु जो बुद्धिहीन होते हैं, वे प्रसन्नचित्त कैसे रहें ?

समर सियाल् सुभाव[6] गलियारां गाहड़ करै ।
इसड़ा तो उमराव; रोट्यां मुंहगा[7], राजिया ।।१४४।।

(युद्ध-भूमि में जो गीदड़ बने रहते हैं और गलियों में शूरवीरता दिखलाते फिरते हैं, डींगें मारते-फिरते हैं । ऐसे उमरावों को मात्र रोटियों के बदले में रखना भी महँगा ही है ।)

सह[8] देखै संसार, निपट करै गाहक निजर ।
जाणै जाणणहार, रतनां पारख, राजिया ।।१४५।।

(वैसे तो सारा संसार रत्नों को पदार्थों की दृष्टि से देखता है परन्तु गुण ग्राहक ही उनको केवल अपनी पारखी दृष्टि से देखता है । रत्नों की परख केवल उनके गुणों को जाननेवाला जौहरी ही करता है ।)

साँचो मित्र सचेत, कहो न[9] काम करै किसो ।
हरि अरजन रै हेत, रथ कर हाक्यों, राजिया ।।१४६।।

(बताओ, सच्चा मित्र सदा सचेत रहकर अपने मित्र का कौन-सा काम पूरा नहीं करता अर्थात् सारे काम सदा करता है । देखो, भगवान कृष्ण ने अपने मित्र अर्जुन के भले के लिए स्वयं अपने हाथ से रथ चलाया ।)

साम-धरम अर[10] सांच, चाकर जिकेई[11] चालसी ।
उन्ही[12] वां नैं आंच, रती न आवै, राजिया ।।१४७।।

पाठान्तर : १. मौसर २. अवसर ३. औसाण ४. चितराजी ५. भूम ६. सभाव ७. मूधां ८. सब ९. काम न १०. घर ११. जिके ही १२. ऊनी आंनै आंच

(जो सेवक स्वामि-धर्म का पालन करेंगे और सत्य पर चलेंगे उनको रत्तीभर भी आँच नहीं आ सकती, उन पर कोई भी विपत्ति नहीं आ सकती ।

सार तथा अण सार, थेटूं[1] गल् बंधियों थको ।
वड़ी सरम रो भार, रालयां सरै न, राजिया ।।१४८।।

(इज्जत, लोक-लाज या शर्म का भार बहुत बड़ा है । इसमें सार हो या न हो परन्तु परम्परा से जो काम इज्जतदारों के (बड़े लोगों के) गले से बँधा हुआ है, जिसे ये लोक निन्दा के भय से करते आए हैं । इस भार को गिराया नहीं जा सकता ।)

स्यालां संगत पाय, करक चंचेड़ै[2] केहरी ।
हाय, कुसंगत हाय, रीस न आवै, राजिया ।।१४९।।

(गीदड़ों की संगत में पड़कर सिंह भी सूखी हड्डियों के ढाँचे को बिखेर-बिखेर कर चबाने लगता है । हाय, कुसंगति हाय, तुझे धिक्कार है । देखो, शेर को इस गिरावट पर रोष तक नहीं आता । कुसंगति में पड़ने पर गिरावट की कोई सीमा नहीं रहती ।)

सीतापति स्रब[3]-जाण, काँई[4] अतवी नां करो ।
मह सीतलां मल्हाण, रासभ दीनो, राजिया ।।१५०।।

(सीतापति भगवान श्रीराम सब कुछ जानते हैं । इसलिए उनसे कोई कपट व्यवहार मत करो । देखो, भगवान ने शीतला को धरती पर सवारी करने के लिए गधा प्रदान किया ।)

सुख में प्रीत सवाय, दुख में मुख टालो[5] दियै ।
जो[6] की कहसी जाय, राम-कचेड़ी, राजिया ।।१५१।।

(जो लोग सुख के समय अत्यधिक प्रेम करते हैं, वही दुख के अवसर पर मुँह छिपा लेते है । ऐसे लोग भगवान के न्यायालय में जाकर क्या कहेंगे ? ऐसे स्वार्थी मित्रों से सावधान रहना चाहिए ।)

सुण प्रस्ताव सुभाय, मन सूं यूं भिड़कै मुगध ।
ज्यूं पूरवियों जाय, रत्ती दिखाया, राजिया ।।१५२।।

(मूर्ख आदमी हित की बात भी सुनकर अपने मन से इस प्रकार भड़क उठता है जैसे चिरमी (घुंघुंची) दिखलाने से रंगा-स्वामी भाग जाता है ।)

सुध[7] हीणा सिरदार[8], मतहीणा राखै मिनख ।
अस[9] आंधो असवार, राम रुखालो, राजिया ।।१५३।।

पाठान्तर : १. ठेट्ट २. छंछेड़ै ३. सब ४. काई ५. टाला ६. जे के ५. सतहीणा ८. सरदार ९. अंध घोड़ी

(जहां मूर्ख सरदार हों तथा जो मतिहीन मनुष्यों को अपने पास रखता हो, ऐसे अन्धे सवार के समान उस सरदार का राम ही रक्षक होगा अन्यथा उसका नाश निश्चित है।)

सौ मूरख संसार, कपट जिणां आगल. करै।
हरि सहु जाणणहार, रोम-रोम री, राजिया ॥१५४॥

(सम्पूर्ण संसार पागल (मूर्ख) है जो अन्तर्यामी के आगे भी कपट करता है। वह तो रोम-रोम (कण-कण) की सब बातें जाननेवाले हैं, सर्वान्तर्यामी है।

हितकर जोड़े हाथ, कामण[1] सूं न डरै कवण।
नमै त्रिलोकीनाथ, राधा आगल., राजिया ॥१५५॥

(संसार में कामिनी से कौन नहीं डरता अर्थात् सभी डरते हैं। सब उसके सामने प्रेम-सहित हाथ जोड़े खड़े हैं। देखो, तीनों लोकों के स्वामी भगवान कृष्ण भी राधा के आगे झुकते हैं। तब औरों की तो गिनती ही क्या है?)

हित चित-प्रीत हंगाम, म हक बखेरै मांढवा।
करै विधाता काम, रांडांवाला, राजिया ॥१५६॥

(विधाता हृदय की प्रसन्नता और प्रेम के राग रंग को अनधिकारी (अनुपयुक्त) लोगों में बिखेरता है। इस प्रकार वह मूर्ख औरतों के से काम करता है। छिनाल स्त्रियाँ हर किसी को रिझाया करती हैं।)

हिम्मत किम्मत होय, बिन हिम्मत किम्मत नही।
करै न आदर कोय, रद कागद रो, राजिया ॥१५७॥

(साहस से ही व्यक्ति का मूल्य (आदर) होता है। मनुष्य महत्त्वशील समझा जाता है। बिना साहस के आदमी का कोई मूल्य नहीं है। जैसे चिंदी किये हुए पत्र (पढ़कर फेंके गए पत्र) का कोई सम्मान नहीं करता है। उसी प्रकार निर्बल मनुष्य का कहीं आदर नहीं होता है।)

हिये मूढ जो होय, की संगत ज्यां रो करै।
कालै. ऊपर कोय, रंग न लागै, राजिया ॥१५८॥

(जो व्यक्ति मूर्ख-हृदय होता है, सत्संगति का उस पर कोई प्रभाव नहीं हो सकता। संगति उसका क्या सुधार कर सकती है? जैसे काले रंग के ऊपर कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता।)

हुन्नर करो हजार, स्याणप चतराई सहित।
हेत कपट व्यवहार,[2] रहै न छाना, राजिया ॥१५९॥

पाठान्तर: १. कामण से अनमी किसो २. विवहार

(कोई चालाकी और चतुराई के साथ चाहे हज़ारों उपाय कर ले परन्तु सच्चा प्रेम और कपट का व्यवहार कभी छिपे हुए नहीं रहते अर्थात् किया हुआ व्यवहार कभी छिप नहीं सकता।)

हुवै न बूझण हार, जाणै कुण कीमत जठै।
बिन[1] गाहक व्योपार, रुल्यो गिणीजै, राजिया ॥१६०॥

(जहाँ कोई वस्तुओं की पूछ करनेवाला नहीं होता, उनको समझनेवाला नहीं होता, जहाँ वस्तु की कीमत जाननेवाला कोई ग्राहक नहीं होता, वहाँ का व्यापार चौपट हो जाता है। बिना ग्राहकों के व्यापार चौपट हुआ समझना चाहिए। गुण ग्राहकता के अभाव में सारा काम बिगड़ा हुआ ही समझना चाहिए। (स्थान, व्यक्ति, वस्तु आदि सबके लिए यह बात लागू होती है।)

हुवै न रंचक हाम, मोटा घर देवै जनम।
करै विधाता काम, रोल् करण जग, राजिया ॥१६१॥

(जिनमें ज़रा भी हिम्मत (धैर्य) नहीं होती, ऐसे लोगों को विधाता बड़े घरानों में जन्म दे देता है तो लगता है कि वह संसार में गड़बड़ी फैलाने के लिए ही ऐसे कार्य करता है।)

ख. कवि की अन्य रचनाएँ—

१. कवित्त चाल्रैराय का, कृपारामजी खिड़िया का कह्या—

अथ गाथा

मद मदरा रसमत्ति आपांण रंगु अहरत्ति[2]।
करत विलास सकत्ति[3], चाल्राय मंड चालकनै ॥ १ ॥

कवित्त

वन समाज अति विपुल, सदा रुतिराज[4] छरुति सुख।
लता गुलम तर[5] तरल, माल् मिलि मुखर सिलीमुख[6] ॥
सरभ धनख गव ससक, सूर चित्रग पंचाणण।
ऐण विविध मृग खग भवण, भावण भिल्ली जण ॥
निसिचारि निकर निरदल्, नियत तै आघोफर[7] वियततल्।
चाल्क्कराय खेलत विचित्र, थट नाटक मन रंग थल् ॥ २ ॥

पाठान्तर : १. बिण; शब्दार्थ: २. अहोरात्र ३. शक्ति, दुर्गा ४. वसंत ५. तरु ६. भौंरा ७. मध्य

कमल. कमल. थल. कलित, अमल. कुंकुम रसवंतह् ।
गंधसार मृगसार अगर, घणसार[1] अंनतह् ।।
केतकि केतक कुंद कंज, कमणिय कुसमाकर ।
तंत्र ताप हरि तिमिर, छत्र मांहिं ताम छिपाकर ।।
आद्रत सुगंध मकरंद यल., फटिक बन्द उज्जल. फरस ।
जरजोद आस तिण खास जटि, रमणरास अम्बा सरस ।। ३ ।।
चक्र धरण धर चाप, आप धाता परसाधर ।
सक्र दनवर मिहिरसोम, नव कुल. काकोदर[2] ।।
विद्याधर गंध्रब्व सिद्ध, चारण किन्नर सह ।
जखि[3] अछर[4] रिखराज, बीर खेला बावन्नह् ।।
नवनाथ अंसधारी निखिल, भैरवादि कोतिक भमर ।
ततीस कोड़ प्रमदा सहित, आण दत्त आये अमर ।। ४ ।।
मुरज विपंत्रक डमर, तुरज भेरी दर तूरण ।
सुर धुंधवि सहैनायि, प्रणव गोमुख परपूरण ।।
श्रीमंडल सहतार स्रंग, झालरि झइणणाटा ।
घणणाटा घूंघरां ठणकि, तालां ठणणाटा ।।
सिभूत धात तुचदार सह, आसिहसत पथ जूजवा[5]
खट-तीस भेव बाजत करखि, हरखि देव हाजर हुआ ।। ५ ।।
मज्जनादि षोडस मनोग्य, स्रंगार सुसज्जिय ।
काय पटल. परमल. प्रकास, अदभूत उपज्जिय ।।
रुकम-तार[6] सुकमार हार, माणक मोताहल.[7] ।
रुचि दुकूल नवरंग, परम गैतूल. परम्मल. ।।
कर चरण लंक भूषण करण, घूनल. घ्राण समंधरे ।
कोतुक सुतन्त्र क्रीडा करण, आप सकत्ति ऊतरे ।। ६ ।।
ले हाला रस लाल, झूल चोसटि रव झल्लिय ।
हड़ हड़ हड़ हंसि होड़, षड़ड षड़ खेतल.[8] खिल्लिय ।।
भ्रणणण रणण रणण भेरि, तंत्री नद मणणण ।
घूघर घणणण रणण घोर, झझर सुर झणणण ।।
मन मगन ऋदसि अनमिख मुदित,[9] आंणद उदध[10] उलट्टियो ।
अदभूत खेल नाटक अमल., थल. मन रंग सिर थट्टियो ।। ७ ।।

---

१. कपूर २. नाग ३. यक्ष ४. अप्सरा ५. अलग-अलग ६. सोना-चाँदी
७. मुक्ताफल ८. क्षेत्रपाल ९. अपलक १०. आनन्द का समुद्र

धम धम धम धम धरणि, धरणि धर धाम धमक्किय ।
मेचक्किय त्रय भुवणविधु, नभ गवण विथक्किय[1] ।।
हलि अंगद आटंक हार, मंजीर मनोहर ।
भ्रल्ल्ल् रल्ल्ल् भल्क्कि, आभूषण अम्बर ।।
बंधाण राग पय[2] गति विबिधि, मधि म्रदंग-धुनि माधुरी ।
अदभूत करत आधोफरै, रस विलास नाटेसुरी ।। ८ ।।
धुधुकट धुधुकट घपट धमक, धम धुकुट भ्रकुट धप ।
थागड़ गड़दा थई थई थटि, धागड़ गड़दा धप मप ।।
लागि दाट चल पलथ-उलथ, बक उरफ-तिरफ अति ।
सुलप भार टीका सुचंग, ग्यारह संगीत गति ।।
मुरछना ताल सुरग्राम मिली, धाम तान बंधुर धरत ।
सुमनस[3] विलोकि नाटिका, सुषम कुसम थाट बरखा करत ।। ९ ।।
उलट पलट फणगट अछेह, पिंड[4] लपट झपट पट ।
उरज उचक्कि कच लचकि, अंध्रि तल[5] मचकि अवनि तट ।।
ग्रीव हलत चख स्रंग, अंग रस रंग उपट्टत ।
छड़ छड़ द्रवं छड़ छछड़ थुंग थुंगह धुनि थट्टत ।।
आहलाद मगण हुय गण अमर, बपु अंग संग्या बीसरी[6] ।
चतुरास[7] हरख हरि हर नचत, रचत रास लखि ईसरी ।। १० ।।
सिभं पंभंजि[8] निसंभ, मुंड कत चंड खंड महि ।
रक्तबीज भनि रोम, हयँ असुर कच संग्रहि[9] ।।
बड़ाँ वड़ी वड़ वाक, डाक आडम्बर डोलत ।
जय जय जय जय जयत, ब्रंदब्रन्दारक[10] बोलत ।।
अम्बिका आदि भूता अखिल, कादि कीट लग कारणी ।
नहि पड़ै सूझ आगमं निगम, तूझ चरित भव-तारणी ।। ११ ।।
बिधि सरूप जग विविध, रचत तूं ही सुरराया ।
बिसन[11] रूप तूं बणँ, मंड पालत महमाया ।।
तूं कर धरे त्रसूल, रुद्र रूपा संधारत ।
तूं उतपति[12] तूं सथत[13] , तूं ही जल अम्बर नको तत[14] ।।

शब्दार्थ :
1. रुकगया 2. पद, पैर 3. देवता 4. शरीर 5. पदतल 6. अपने शरीर की सुधि भूल गये 7. ब्रह्मा 8. नष्ट 9. केश 10. पकड़ कर 11. देवगण 12. विष्णु 13. स्थिति 14. तत्त्व

सिच्चिदानंद रूपा सकत, तूं अनेक गत बिस्तरी ।
जगदम्ब एक तूं ही जननि, संतत बाला सुन्दरी ।। १२ ।।
चरण जलज रज रुचिर, भजत अज स्रजत अरज भव ।
सर्वकाल इच्छत सहस्र, मसकत धरि माधव ।।
गंगधरण क्रत संग, परम भसमंग विलेपन ।
खं जल् महि हरि खिखि[1], तत्ववर त्रिगुण तास तन ।।
अव्यय अनंत अनविधयक, अग जग व्यापक सरब मय ।
कहि कृपाराम कारण करण, जय जय जय जगदंम्ब जय ।। १३ ।।

२. **कवित्त आरती का**

मिलत ओक निसचरण, कोकनद[2] मधुप कोक जिम ।
सुमन वास दिनकर प्रकास, छूटत अकास तम ।।
दध अमाम झल्लरि दमाम, बिध बिध नह बज्जत ।
सिवा[2] झली कोसिक[3] स्रंगाल, सुर नाहिन सज्जत ।।
छाड़त कसिप नर तंब बच्छ[4], तर बिहंग जित-तित्थ सूं[5] ।
सोई संभ सुमरि-किरपा सुकवि, चाल्राय यिक[6] चित्त सूं ।। १ ।।
कर प्रचंड कल्मल्त, बल्त बाजंत सुसनवर ।
पंच अगनि थिर तपत, धीर हर जपत तपत धर ।।
लता सुमन कुमल्रात, सात षट मुर[7] धड़ सज्जत ।
उपवन बिपन अजार, तरल तरु छांह न तज्जत ।।
चर जीवन को सचर चलत, मानि भीत अति मित्त सूं ।
सोई संभ सुमरि किरपा सुकवि, चाल्राय यिक चित सूं ।। २ ।।
ससि मारीच[8] अरची प्रकास, सुभ बास संवोगणि ।
कोक नाद कौसिक प्रसाद, बर कदन बिजोगणि ।।
प्रोखंतिपतिका[9] दरस सूर, कर सरस पंकज कलि ।
गोनिनाद अनि पतंग साद, अति नाद पंख यलि ।।
संकुचे खुलत खुल्ले संकुचि, संमुख करत निखत्त सूं ।
सोई संभ सुमरि किरपा सुकवि, चाल्राययिक चित्त सूं ।। ३ ।।

शब्दार्थ :
1. आकाश, जल, पृथ्वी, पवन और अग्नि 2. कमल 3. गीदड़ी 4. उल्लू
5. जहाँ-तहाँ से 6. एक 7. तीन 8. किरण 9. प्रोषितपतिका

जटत रोग जागंत रत्त के जोग भोग रस ।
सकल जंत पट जाम, अंत सोवंत नींद बस ।।
बहुत नीच क्रव्यादि नखत, अमीय आप तन ।
तरकि तंत्र अति मंत्र, जंत्र साजंत जती जन ।।
चालंत चोर चंहु दिस चपल, साभि नेह अति बित्त[1] सूं ।
सोई संभ सुमरि किरपा सुकवि, चाल्राय यिक चित्त सूं ।। ४ ।।
कनक थाल् जल् गंग, बेद उच्चरत्त बबेका[2] ।
चोवा चन्नण चरचि, अंग आभरण अनेका ।।
काजल् तिलक तमोल्, धूप दीपग मोताहल् ।
केसरि कुसुम कपूर, नूर सिंदूर झलाहल् ।।
डाक चंग अदंग झींझं झालरि सहनाई ।
भूगल् भेरि नफेरि बाजि नीसाण त्रधाई ।।
जीवण सुत नेता झरै, अच्छरा[3] गीत उचारती ।
श्री चाल्राय ऊपर चमरू, अमर करै श्रीआरती ।। ५ ।।

३: चाल्कनेच रो नाटक

अधनारी सज सांग अखाडै, आच खपर ले खाग उघाडै ।
बाजोई डमरू डाक बजाडै, जोगणि सूतोइ नाग जगाडै ।।
साथ झूलर ले सगति सहेली, नरत घूमरदे रूपनहेली ।
अतर फुलैल कियां अलबेली, तीन लोक ऊपर छवि टेली ।।
कांना हंस बिराजै कुंडल, अन्दइ रूप दीपै चन्द ऊजल् ।
बणि पौसाक जरीकस बद्दल्, जां बिच गात भल्क्कै बीजल् ।।
चंगा चीर धारिया धूपर, अखन कंवारी बालाइ सुन्दर ।
रमत मात मन रंगथल् ऊपर, सूधा सिखर अलग अध्धफर ।।
खड़ग स खपर हाथ लिया मुख वीड़ी मक्कर मुख ऊपर चखियां ।
खण बाहण बंबर माथ ही संकर, नक्कर नर सुर नाग नमैं ।।
बणि ज्वान घड़ी खिण बुढिया बालक रामत चाल्कनैच रमैं ।।
चटकी दै ताली फिरत उताली रमत कमाली सुरराया ।
कुडंल किरणाली दीप दीवाली मंगल् जाली महमाया ।।
चाल्क चिरताली मद मतवाली बरणि पियाली गाढ घमै ।
बणिज्वान घड़ी खिण बुढ़िया बालक रामत चाल्कनैच रमैं ।।

शब्दार्थ :
1. धन 2. विवेक 3. अप्सराएँ

तिलड़ी लड़ लटकत तड़ता तटकत गटकत भोजन गुंद्द गिला ।
पीवत मद भटकत प्याला भटकत थटकत नित मन रंग थला ।।
नाचत नर्त नटकत अलका छिटकत भँचरा अटकत बास भमै ।
वणि ज्वान घडी खिण बुढिया बालक रामत चालकनैंच रमै ।।
तन तैज भलक्कै बीज भक्कै हार हलक्कै हीर हियै ।
गल हांस ठल्लक्कै नग्ग पलक्कै मधुर मुलक्कै हास कियै ।।
ठम चाल टल्लक्कै बैण ललक्कै जेण समै ।
बणि ज्वान धड़ी खिण बुढ़िया बालक रामत चालकनैंच रमै ।।
घुघुर पाय घणणणण गाजै गिर गणणणण अबंर सणणणण भणणणण
मृदंग ताल भणक्कै ।
खंजर खणणणण भीभा भणणणण नेवर ठणणणण डमरू डकडकै ।।
फिर फोरा फणणणण घूमर घणणणण जेवर जणणणण खणणणण कंचन
चूड़ खिमै ।
बणि जवान घड़ी खिण बुढिया बालक रामत चालक नैंच रमै ।
गूथ्योअ गजरा औपैइ अजरा रंग सो सजरा हाथ रखै ।
खिम लोयण खिजरा कठंहि फजरा ईसर मुजरा जाय अखै ।।
लै घूंघट लजरा ग्यान सो गुजरा जाणत तुजरा खैलत मै ।
बणि ज्वान घड़ी खिण बुढिया बालक रामत चालक नैंच रमै ।।
तरगिर थंडी रच नव खंडी दाणव दंड्डी गयण रसा ।
सिस मांण समंडी पिंड प्रचंडी उमंग उदंडी रूप इसा ।।
चिरता धन चंडी बप्प ब्रह्ममंडी जगत अखंडी जाय रमै ।
बणि ज्वान घड़ी खिण बुढ़िया बालक रामत चालक नैंच रमै ।।

छप्पय

रामत चालक मै जकी गति लखी न जावै ।
इन्द्र करत आदेस परमगत लखी न पावै ।।
सेस नवावत सीस धिनो नर्त तूझ सकत्ती ।
आई आदि अनादि पुरख पुराण प्रक्रत्ती ।।
सुर असुर पार पावै नहीं, आप बड़ा छो ईश्वरी ।
चालक देवी चरत चवै, जयो मात जोगेश्वरी ।।

४. षट् ऋतु वर्णन

(कवित्त षट् ऋतु का, कहीया कृपाराम जी वाबाजी का)

बसन्त बरनन

तरनि प्रहार करकर तन तत्र तन, मंजरी सुमन घन पत्र तर मूलि मूलि ।
कहूकात कोकिल त्रिविधि बात बहरात, भ्रिगीगन गात हुलसात अलि भूलि-भूली ।
उपधान कस्यप प्रसून गन आम्र कै, सयरंध्री सदन संवारी वर सूलि सूलि ।
कृपाराम सुन्दर बसन्त रति फूलिन की, फूलनि मे ललीलाल लीला फूलि-फूली ।। १

ग्रीषम रुत बरनन

चनन करन चोम हरन कवीजे चारु, पंकज परम की लरन ढिग लाय लाय ।
मजुल कुरंग सार धनसार कासमीर बिरकि, छिरकि गुलाब नीर सेज सीर छाय ।।
पखन भुलावै पुन त्रविधि नवीन प्यारी, गहि बीन सारंग प्रवीन राग छाय ।।
कृपाराम असै जो निदाध की दुपहरी में, लीला लाल लाडली करत गाय ।।
सुख पाय-पाय पाय पाय सुख पाय पाय ।। २

बरखा बरनन

चहूवोर धारा धर धार यक धार चलै, दुरद अपार से दरार नार दल दल ।
तुटत कनारे तर लूटत तंरगनी के, खूटत नटत पनारै वारिखल खल ।।
कृपाराम केकी नभ कोक चारु झिल्ली कुल, ललित कतूहल करत गुंजि थल-थल ।
असे में चमकि चाहि चपला की चमकनि, लपटत लालके हीयै तै प्यारी पल-पल ।। ३

सरद रुत बरनन

फटिक सिलान निक फरस सफील पैरी, सुधा सौ सुधा सनो सौधि सुन्दर सरद ऐन ।
चान्दनी बितान जरदोज के बिछोने चारु, फैलि रहे चहूओर पूर पय कैसे फेन ।।
सुमन जलज घनसार लौ अपार सौज, बने हरि राधै कहा वरनि बतावै बैन
कृपाराम बारिजहू बारद को चली कौन, नारद हू सारद की भारद लगत नैन ।। ४

हेम रुति बरनन

सीतल समीर छिति नीर नभ हेम समै, देखत चिकोरी धीर उड़ पद रस पर ।
तेल तूल तापन तपन ओद कूल तन, छीर मद पानपान रुचित घरस पर ।।

चन्दनन चन्द्रकन चन्द्रमान चन्द्रनीन, सुमन उसीरनन भावत सरस पर ।
कृपाराम स्याम स्यामा भीरते करनि असे, पारे की परनि मांहि उरनि परस पर ॥ ५ ॥

सिसर रुति बरनन

लतातन्त विटप जलज उलहात लखि, मधुप सुकण्ठ होते मुनिन चपल मति ।
बेना तार चंगन म्रदंग धुनि बानि कैते, अतुल विपचकन पंचम बनावै अति ॥
कोकादिक मनित रसिक ग्रंथ कमनीय, रचि सात सात विधि वहरति अन्तरति ।
केते मयमन्त बिलसन्त सुख कृपाराम, आगम बसन्त कन्त कामनि अनंत गति ॥ ६

(ग). **फुटकर रचनाएँ**—गीत, कवित्त, छप्पय आदि

१. **गीत सालिमसिंह रो**—

महारूद्र रै मातंग धू उग्रधीस गण तेज धाम,
द्रोही कणो अद्ररे भूवला द्रोण धार ।
जादवा इद्रं रै वणौ मनोज कुमार जेहा,
अेहों देवीसिंघ तणो आहंसी कुमार ॥ १ ॥
जीतंगी जरारावालौ हैरम्बी उपायजादो,
जोधार धरारावालौ वायजादो जेम ।
ईसान परारावालो संभारा रतायजादो,
अनम्मी हरारावालौ रायजादो अेम ॥ २ ॥
धूदांण खाटवी तणौ भक्रतुण्ड धार मेधा,
सूदांण थाटवी तणौ कूदांण केसोत ।
मूदांण थाटवी तणौ जेहड़ो पताखामीन,
दूदांण पाटवी तणौ अेहड़ो देसोत ॥ ३ ॥
बिसू जोग हेडंता छातरे गाधीस बीर,
वेला अंब खेड़ता छायरे प्रलम्बेस ।
तंवीनाथ कैड़ता छातरे मक्रकेत नेहो,
मेड़ता छातरे पुत्र अेहो सालमेस ॥ ४ ॥
आसतीक क्रोधवेता बोध वासतीक अेहो,
सोभा कामरूप लेतां सासतीक संग ।
अहेतां बीनासतीक जेतां रासतीक अैहो,
अैता आसतीक जेतां स्त्रातीक अंग ॥ ५ ॥

२. गीत राव देवीसिंघजी सीकर रो—

पिण्डां मेर सा प्रचण्ड छटा धर सा बोझ रै रूप,
कपोला नीझरै जेरसा कसोत ।
अरी गढ़ां गेरसा आत सार अंजना अंद्र,
देवसा येरसा करी वरीसै देसोत ।। १ ।।
अगांटा लै निचला संचला आसीन अम,
रंगां चौल चंचला रेखावत्त ।
आमला स जडु याल सामला भै भूत अंगा,
समापै मातंग येहा चंगा सेखावत्त ।। २ ।।
रठ ठंठ लंगरा ठणका वीर घंटा राग,
माहा धुनी सागरां प्रथांग मांग मंड ।
परा लाग जेहड़ा कलेंद्र नंद थाट पीथा,
चंद नंद ओहडा पनाग दे प्रचंड ।। ३ ।।
हाटका जोहरां मेघाडम्बरां जलूस होदां,
केई हेवै मोदा भाल कीरती केवाल ।
दातारां भूपाल सारां वुप रा सिवसाह दूजा,
देवसा चिरंजी एहा गयंदा देवाल ।। ४ ।।

३. गीत राव देवीसिंघजी सीकर रो—

गांजां है खुरां बांणांस धारां पायका धरत्ती गाढी,
बरत्ती सायकां चाढी डरत्ती बाधीन ।
करत्ती धायकां नह नायका हरत्ती जका,
धरत्ती सरत्ती सत्ती वांयका आधीन ।। १ ।।
बीर चाला मंडै जेण चंदरा अजानवाह,
धीजाला थंड रा रण ब्रंद रा बुधंग ।
खला धूलमंड़ा रा सूर तूर ब्रीदु त्रीय खंड,
सुभी बीया बूर बीछड़ छंद रा प्रसंग ।। २ ।।
बाज बण हासली कलासली गरज वीर,
रमांती आलीत जकां समीरू कम्म ।
सूपसला त्रासली सुलध जकां देवी सिंघ,
कासली अपैसला बन बलध हुकम्म ।। ३ ।।
पाटालां पनांग राह बाग रा हम्मला पूर,
नम घू नाग रा अह माग रा नसावि ।

हाल भूपतां रा खाग सु खिवसिंध हरा,
सांगरा सुचता रूप सेखाणी सुभावि ।। ४ ।।
आठा छंडि फला बींध तोयणां कोयणां आस,
ओयणां की दरा सला दीयणां अंगार ।
साधी भोमि सोयणां अटाधि गल्लां चाल संक,
लोयणां कटाछि छलां न भाल लंगार ।। ५ ।।

४. गीत पोकरजी को (कृपाराम बाबाजी रो कहियो)

मंडै आणि काति मास नवां खंडां तणां मेला,
सिधां खेला भेला वहै उणिदा सा महेस ।
आसी बिरवां नरां सुरा समैला समाज येहो,
थापियो विधा ला येला लोक तीरथेस ।। १ ।।
वर्णै अंद्र ओक हूंत मुनिद्रां पुलिद्रां बात,
वेलि भौमि जात थोक ओखधी विधान ।
सीगी चरो चक्र छात किन्नरां बुदात रुंगा,
निरझरां पात धात सात मनि धान ।। २ ।।
भासै ईठां पिनाकी प्रताप रूपी अद्रमती,
त्रासै दीठां किना की अताप रूपी ताप ।
जेण तरी जोगिद्रां विराजै जाप रूपी जको,
आप रूपी लोगिद्रां विराजै थाप आप ।। ३ ।।
सोपानां सुढाला घाट तुद्र थाट चत्रसालां,
सयंभुअ जाद रुद्र बिसाला सुथांन ।
भासती प्रदीप माला अणि जला विभै भासै,
सुरां लोकवाला जांणै प्रकासै सनांन ।। ४ ।।
सुसी ग्राह नक्र भेख किलोला असेख साजै,
सतोला पंकजां टोला दुरेफा समाज ।
पाज अंसा लागि गाजै उरम्मि हीलोला पूर
राजहंसा होला दोलां राजै संत राज ।। ५ ।।
होता पोणन्हाण पावै अम्रतां अकाल हारी,
मुरारि विलास रूपधारी माल मुंड ।
रटै आप ताप जाल घालिया अकाल रहै,
कहै ताप पाप जाल भालिया त्रकुंड ।। ६ ।।

दीहां पंच द्वादसा सुघाटां भाव प्रीत दीधा,
बे लोके वणावा रीत लीधा मनोवाक ।
लाभ असरीरां लाभ कृपाराम जकां लीधा,
पोहकरां पीधा नीर कीधा गात पाक ।। ७ ।।

५. गीत देवी री स्तुति रो—

गाढा दांण वांगां जेवा गाव भवानी आदेस भाव,
चहूं चका सीस चाव दीप बिरदाव ।
पंख रा वहुला पांव धावलियाली वेग धाव,
खला डला पला खाव आव अंब आव ।। १ ।।
तेमड़ा सुकोपि तस डूगरेच्यां धारि डस,
गणेशज ही अगस आव खण्डे अस ।
जग मै करवा जस दसू दिसा देस दस,
रिमा पीवौ रत रचस चस चस चस ।। २ ।।
पखियाणी आव पखि दान आप भाव दखि,
रूप तो अंबरा रखि खला भेलि खखि ।
कड़ कड़के कड़कि वड़ बड़ पाडि बकि,
चोरटा कलेजो चखि भखि भखि भखि ।। ३ ।।
तुझ नाम भणतेव थिरू आजि लगै थेव,
खरी सेव घूप खेव वले लेव भेव ।
गये दीठी गुण गेव सेवगां करतां सेव,
आई नहीं वार येव देव देव देव ।। ४ ।।
गिरां राणी कथगीज काम चित ढील कीज,
तूं धणी सामरणां तीज देखां दुख दीज ।
खडे हैड हुई खीज लाखां दाण बालडीज,
पिसणां माथै पड़ीज बीज बीज बीज ।। ५ ।।

कवित्त

१. महाराजा विजयसिंह का कवित्त—

लै लै चातराई चतुरानन बनाई चारु,
सोभा सरसाई दुति अमृत सनी सनी ।
अम्बर बिलास ये बिलास वर अम्बर के,
ललित प्रकास हास लसत घनी घनी ।

खचित जतन जुत रचित सु आमुखन,
कृपाराम तारे गन रतन कनी कनी ।
चन्द्र भान भूप बिजै साहजू की चहू चक,
बदन उधारे डोले कीरती बनी बनी ।। १ ।।

२. गोरधन खीची का कवित्त—

कृपाराम लीनो रस नूर निकल मानी,
कीनू ससि सूर मिस पूरन मरीची को ।
जिन्ह खेदी दूखन जनायो पर वाहन को,
ब्रिह्म पदी भूखन बनायो वर बीची को ।
नगर नगर देस देसन के देखबे कू,
पायो पार प्राची जाम उतर प्रतीची को ।
पेर्‍यो बिजै साह के प्रचण्ड परतापन को,
खेलत अखण्ड जस गोरधन खींची को ।। २ ।।

३. सूरजमल समासिंघोति का कवित्त—

सुमनस आपगासी अमृता ये मृत असी,
भूमिपति छत्र हास रस बल भानसी ।
सरद के बारद सी बारज सीवा रद सी,
सारद हू नारद सी पारद सथान सी ।
कृपाराम मोतिन के पुंज सी प्रकासमान,
हीरा हेम अद्र हंस श्रेस हिमवान सी ।
देस देस नगर नगर पर देखियत,
कीरती सुजान जू की कुंद कलिकान सी ।। ३ ।।

कलिस कराल ज्वाल तायेक कलित तेज,
दरी अत नायक डहायिक बलिन्द्र के ।
गाहिबे कू बलि ताप लायिक उपिन्द्र डग,
दोहिवै को छली दाप बायिक ललिन्द के ।
आसी बिख धायक अधायेक परिन्द्र बेव,
लहिबे को चन्द्र छिप्र पायेक कलिन्द्र के ।
सोखन समंद्र कर छायेक त्रिकूट सैयो,
सूजा, तेरे सायक ये खायेक खलिन्द्र के ।। ४ ।।

४. जवानीसिंहजी का कवित्त--

कुलिस कराल मघवान जू के मानकारी,
किधूं अंसुमान जू के तेजवान कर हैं।
फरस फरस पान जू के रजधान पर,
गहर अमान फनवान जू के गर हैं।
कान्हा जू के चक्र ऋहमान जू के तेज किधो,
हाक हनुमान जू के रान प्रान हर हैं।
थान जू के कंकन खलान जू के खाय बेकू,
सान जू के सूधित जवान जू के सर हैं ।। ५ ।।

५. देवीसिंह हरीसिंघोत का कवित्त—

फरस परस को कि वान पान पारथ को,
कोपन्हको कोप कि कराल् ज्वाल काली को।
कलिका को सूल कि कुलिस पाक सासन को,
काल डंड काल को कि कंकन कपाली को।
हरि जू को चक्र कि प्रचक्र परिहन हाक,
हलाहल् तक्षक अहीस हल हाली को।
तेरी करवाल देवा ! सत्रुन के तायवे कूं,
केत धूम्र ताप कि प्रताप अंसमाली को ।। ६ ।।

७. नवलसिंह केसरीसिंघोत का कवित्त

कृपाराम फैली रही खीरोदधि उम्पका सी;
कासी की प्रकासिका सी ठोर ठोर उलकी।
सरद सी सारदा सी सैंधि सूक्र सुक्तत सी,
सुधा सुर सरिता सी सोभा सी सुबल की।
चन्दन सी चन्द्रक सी चन्द्रमा सी चान्दनी सी,
चारुता सी प्रचुर विचारि हेमाचल कीं।
कुन्दन सी कंज सी कपाली कोय केतन सी,
कमल सी कमला सी कीरति नवल की ।। ७ ।।

आरती

जै करनी आरती राज थे रिड़मल्ल।
जै करनी आरती कियो कानु ककल्लं ।।

जै करनी आरती मात का सूर भारो ।
जै करनी आरती समर कालियाँ संघारो ।।
सेवगां साय करणी सदा बाध चढ़ी निति वारती ।
कानिया त्रिहूकाल करिव करनी री आरती ।। १ ।।
भैंचकिया भूपाल काल पडियो चहु चक्कां ।
मरी भूख मेदनी हुई पणि वाडि करक्का ।।
राह वाह दहू राह देखली नूदहू राह ।
हिन्दू मुस्सलमान सोच पड़ियो पतिसाह ।।
सला सेवग सरण राखि मला दुसमण मारिया ।
आप रासंत रखि अबखो बेला आई नाथ उतारिया ।। २ ।।

दूहो

हर आम्बा चिंता हरण, करण सदा शुभ काम ।
कारिज गवन विचारि करि कीजै कृपाराम ।।

छप्पय

अगर अगनि पर धरत जरत सुगन्ध प्रकासत ।
लस्त पस्त कलधौत छरत तन्दुल उजासत ।।
दूध तपत दध मथत घसत चन्दन मृग बेनू ।
तेल तिलन रस ईख पाय बंधन धेनू ।।
फल धरत अम्ब इनियतु पत्थर कृपाराम सच उच्चरै ।
कुलवन्त सन्त सज्जन पुरुष गिनैन औगुन गुन करै ।।

फुटकर पद्य

बैरी नंह बापरै, मेर माछो नंह दोडै ।
सरप नंह संचरै बाड़ चोर नंह तोड़ै ।। १ ।।
प्रेत भूत डंकणी लाय[1] नाहर पासीगर ।
अतरा नंह आसंगै, तेज राबरो[2] अम्परम्पर ।। २ ।।
देस अनै परदेस बिच, राखो छाप खेचरी ।
कवियन नचीत जोखा करै[3] चौकी[4] चालकनेचरी ।। ३ ।।

दोहा

तू बाम तू दाहिण, तू ही दण दीवाण ।
पग पग मग पूठी रखी, आई[5] आगेवाण ।।

शब्दार्थ :
1. आग 2. आपका 3. निश्चिंत होकर आनन्द करते हैं 4. रखवाली में, पहरेदारी में 5. माता (दुर्गा)

सन्दर्भ-सूची

(अ) सहायक ग्रंथ :

चारणोत्पत्ति मीमांसा मार्तण्ड : कविराजा भैरवदान, बीकानेर, संवत १९६२ वि.

चूरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास : गोविन्द अग्रवाल, प्रथम संस्करण, १९७४ ई.

डिंगल गीत : (सं.) रावत सारस्वत, प्रथम संस्करण, सन् १९८६

ढोला मारु रा दूहा : (सं.) रामसिंह, पारीक और स्वामी, संस्करण, वि.सं. १९९१

दुरसा आढ़ा : रावत सारस्वत, प्रथम संस्करण, १९८३

नवलगढ़ का इतिहास : ठा. सुरजनसिंह शेखावत, संस्करण, १९८४

प्राचीन राजस्थानी काव्य : डा. मनोहर शर्मा, संस्करण १९८५

प्रिथीराज राठोड़ : रावत सारस्वत, संस्करण, १९८४

बारहठ ईसरदास : डा. हीरालाल माहेश्वरी, संस्करण, १९८५

रघुनाथ रूपक गीतां रो (मछराम सेवग : सं. महताव चन्द्र खारेड़, संस्करण वि. सं. १९७७

राजस्थान इतिहास, दूसरा भाग (टाड) : अनु. बलदेवप्रसाद, सं. १९६६ वि.

राजस्थानी भाषा और साहित्य : मोतीलाल मेनारिया संस्करण वि.सं, २००६

राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा. हीरालाल माहेश्वरी, संस्करण, १९६०

राजस्थानी वीर गीत, संग्रह-भाग १-२ : (सं.) सौभाग्यसिंह शेखावत, संस्करण, १९६८

राजस्थानी सबद कोस : सं. सीताराम लालस, संस्करण, वि.सं. २०१८

राजस्थानी साहित्य सम्पदा : सौभाग्यसिंह शेखावत

राजिये रा सोरठा : थानवी शिवदान, गहलोत, गोपाल दिनमणि, श्री स्वामी जी अचलसिंह, बारहठ पीरदान, बीका चनरसिंह आदि द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित सभी संस्करण

राजिये रा दूहा : (सं.) श्री नरोत्तमदास स्वामी, प्रकाशक, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९८२

विविध संग्रह : ठा. भुरसिंह शेखावत, संस्करण वि. सं. २०००

वीर सतसई : नाथूसिंह महियारिया, प्रथम संस्करण, १९५५ ई.
शेखावाटी के साहित्य का इतिहास (प्रथम खण्ड) : डा. उदयवीर शर्मा, संस्करण १९८३
सीकर का इतिहास : ले. पं. झाबरमल्ल शर्मा, संस्करण वि.सं. १९७९
हमारा राजस्थान : पृथ्वीसिंह मेहता, संस्करण १९५० ई.
हिस्ट्री ऑफ़ राजस्थानी लिटरेचर : डा. हीरालाल माहेश्वरी, संस्करण १९८० ई.
Prose Chronicles, sec. I pt. I, Jodhpur State (Asiatic Society Calcutta)

(आ) **हस्तलिखित ग्रंथ** :

माधव वंश प्रकास : बख्शी झूंथालाल (ठा. लूणसिंहजी दूबोद की प्रति)
कृपाराम की समस्त रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ : श्री चतरदान खिड़िया, कृपारामजी की ढाणी (सीकर) का संग्रह
कवि के पिता : (जगरामजी) एवं पुत्रों (नगजी, तथा किसनजी) की रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ (श्री चतरदान खिड़िया, कृपारामजी की ढाणी का संग्रह)

(इ) **पत्र-पत्रिकाएँ** :

वरदा : बिसाऊ (झुंझुनूं, राजस्थान)
मरु भारती : पिलानी (झुंझुनूं-राजस्थान)
मरुश्री : चूरू (राजस्थान)
विश्वम्भरा : बीकानेर (राजस्थान)
जसवंत चंद्रिका : बीकानेर (शार्दूल संस्कृत विद्यापीठ, बीकानेर, वर्ष १३-१४)
राजस्थान-भारती : बीकानेर (राजस्थान)
शोध पत्रिका : उदयपुर (राजस्थान)
परम्परा : जोधपुर (राजस्थान)
साधना . डूंडलोद (झुंझुनूं, राजस्थान)
सौरभ : (विद्यालय पत्रिका,विसाऊ विशेषांक, बिसाऊ-झुंझुनूं, वर्ष १९८६ ई.)
हंस : मासिक, बनारस (नवम्बर, १९३७)
भारतीय साहित्य : इलाहाबाद, वर्ष ८, अंक ४
कर्मठ राजस्थान (पाक्षिक) : जयपुर
परिषद् पत्रिका : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, जुलाई, १९६६

——